क़ुरआन

पर
अनुचित आक्षेप

नसीम ग़ाज़ी

विषय-सूची

क्या	कहाँ
1. कुछ किताब के बारे में	4
2. आपत्तियों की वास्तविकता	6
3. जिहाद और युद्ध	8
• एक आवश्यक स्पष्टीकरण	15
4. माले ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त माल)	15
5. हिन्दू धर्म में युद्ध-सम्बन्धी निर्देश	16
• सोचने का सही ढंग	20
6. क़ुरआन और ग़ैर मुस्लिम	23
• ग़ैर मुस्लिम रिश्तेदारों से मेल-जोल और क़ुरआन	25
7. क़ुरआन और धार्मिक स्वतंत्रता	28
8. काफ़िर, कुफ़्र, शिर्क (अनेकेश्वरवाद) और क़ुरआन	32
9. एकेश्वरवाद, अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा और वेद	37
10. पारलौकिक कल्याण और मुक्ति के वास्तविक पात्र क़ुरआन की दृष्टि में	41
11. निवेदन	43
12. सन्दर्भ	47

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

"दयावान, कृपाशील ईश्वर के नाम से।"

कुछ किताब के बारे में

एक दिन हमारे ऑफ़िस में तीन व्यक्ति आए। उनमें से एक सज्जन अपनी वेशभूषा से किसी धार्मिक मिशन के अधिकारी मालूम होते थे। बैठने के बाद उन्होंने ने अपना परिचय कराते हुए बताया कि वे एक स्कूल में अध्यापक हैं, इस्लाम और क़ुरआन के बारे में कुछ प्रश्न उनके सामने आए हैं, उनके उत्तर वे मालूम करना चाहते हैं। यह कहते हुए उन्होंने अपने बैग से एक पुस्तिका निकाली और हमारे सामने रख दी। हमने उसपर दृष्टि डाली तो उसमें क़ुरआन मजीद की कुछ आयतों के बारे में वही आक्षेप थे जिन्हें कुछ हिन्दू संस्थाओं और लोगों की ओर से उनकी पृष्ठभूमि और सन्दर्भ से अलग करके और उनका मनमाना अनुवाद व व्याख्या करके बड़े पैमाने पर फैलाया जाता रहा है। ये आक्षेप क़ुरआन मजीद की उन आयतों के बारे में थे जिनका सम्बन्ध विशेषकर जिहाद, युद्ध, काफ़िर, कुफ़्र, शिर्क और मूर्तिपूजा से था। हमने उन लोगों के सामने उन आक्षेपों की वास्तविकता रखी और फिर उन आक्षेपों का उत्तर देने की कोशिश की।

बातचीत के बाद ईशग्रन्थ क़ुरआन का अनुवाद, ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)* की जीवनी और कुछ अन्य इस्लामी पुस्तकें उन्हें भेंटस्वरूप पेश की गईं और उनसे अनुरोध किया गया कि वे इस्लाम और क़ुरआन का ख़ुद अध्ययन करें।

कुछ समय बाद वे सज्जन मिलने आए और उन्होंने बताया कि क़ुरआन मजीद और अन्य इस्लामी किताबों का उन्होंने अध्ययन किया, जिसके बाद वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि क़ुरआन पर किए जानेवाले आक्षेप बेबुनियाद और भ्रामक हैं। उन्होंने यह भी कहा कि क़ुरआन मजीद की शिक्षाएँ वास्तव में

---

* सल्ल० : इसका पूर्णरूप है 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' अर्थ है "परमेश्वर उनपर अपनी कृपा और दयालुयता की वर्षा करे।"

इनसानों के कल्याण और उनकी मुक्ति के लिए परमेश्वर की ओर से आई हुई हैं जिन से भरपूर फ़ायदा उठाया जाना चाहिए।

उन लोगों से जो बातचीत हुई, उसी की रौशनी में यह किताब तैयार की गई है। इस किताब को पेश करने का उद्देश्य उन ग़लतफ़हमियों को दूर करना है जो क़ुरआन और इस्लाम के बारे में पाई और फैलाई जा रही हैं। इससे हमारा उद्देश्य इस्लाम से लोगों को परिचित कराना भी है ताकि वे एक दूसरे के निकट आएँ। समझने-समझाने का वातावरण पैदा हो और लोग सही अर्थों में अपने प्यारे देश और सम्पूर्ण मानवता की सेवा में लग सकें।

इस किताब में वेदों और कुछ अन्य हिन्दू धर्म ग्रन्थों के उद्धरण और श्लोक भी दिए गए हैं और उनके अनुवाद हिन्दू विद्वानों के भाष्यों से ही लिए गए हैं ; जैसे : स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, पंडित आचार्य श्री दामोदर सातवलेकर जी, पंडित श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी, पंडित श्री राम शर्मा आचार्य जी, पंडित ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी जी आदि। फिर भी अगर पाठकों को कहीं पर कोई भूल-चूक दिखाई दे तो हमें उससे अवगत कराएँ ताकि उसे सुधारा जा सके।

खेद की बात है कि आज भी क़ुरआन के बारे में उन आक्षेपों का प्रचार-प्रसार करके आम जनता को भ्रमित करने और उन्हें सत्य से रोकने का घृणित कार्य किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि इस किताब को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जाए। हमें आशा है कि इससे न केवल ग़लतफ़हमियाँ दूर होंगी बल्कि लोग क़ुरआन जैसे मानवोपयोगी महान ग्रन्थ से लाभान्वित भी होंगे।

आपत्तियों की वास्तविकता

अगर क़ुरआन या इस्लाम की कोई बात किसी की समझ में न आए और वह समझने के लिए कोई प्रश्न या आक्षेप करे तो इसमें कोई हरज की बात नहीं है, लेकिन आमतौर पर क़ुरआन मजीद की आयतों पर जो आपत्तियाँ की जाती हैं वे आपत्तिकर्ताओं के किसी अध्ययन या शोध का परिणाम नहीं होतीं, बल्कि इस्लाम और मुसलमानों को बदनाम करने के लिए क़ुरआन की आयतों (वाक्यों) को मनमाने अर्थ पहनाए जाते हैं और कुछ जगहों पर आयतों का अनुवाद तक ग़लत कर दिया जाता है। आयतों को उनकी पृष्ठभूमि, परिस्थितियों और संदर्भ से विलग करके पेश किया जाता है। इस नीति को कभी भी बुद्धिसंगत और न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता कि किसी धर्म के किसी ग्रन्थ से कोई वाक्य नक़ल करके उसके केवल बाह्य एवं शाब्दिक अर्थ को आधार बनाकर आक्षेप कर दिया जाए या उससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जाए जो वास्तव में कहने या लिखनेवाले का आशय या उद्देश्य न हो। न तो सन्दर्भ को देखा जाए और न उन परिस्थितियों को जिनमें वह बात कही गई है। कुछ संस्थाओं और लोगों की ओर से क़ुरआन और इस्लाम को बदनाम करने का जो योजनाबद्ध अभियान चलाया जा रहा है, उन्होंने तो इसी ग़लत और अन्यायपूर्ण नीति को ग्रहण किया है। ऐसी नीति अपनानेवालों के बारे में हिन्दू धर्म के महान विद्वान और सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं :

> "तात्पर्य जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण या लेख किया हो उसी के साथ उस वचन या लेख को युक्त करना। बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं जो वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना किया करते हैं। विशेषकर मतवाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है।"[1]

बात को समझने और किसी सही निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए केवल शब्दों और वाक्यों के बाह्य अर्थों ही को नहीं देखा जाता, बल्कि उसका सही अर्थ निर्धारित करने के लिए पूरी बात और पूरी पृष्ठभूमि को सामने रखा जाता है तथा आवश्यकतानुसार विद्वानों और विशेषज्ञों से सम्पर्क भी किया जाता है।

यही वजह है कि धार्मिक ग्रन्थों की मोटी-मोटी टीकाएँ उनके विद्वानों ने लिखी हैं। अगर यह मामला इतना आसान होता तो फिर टीकाएँ लिखने की आवश्यकता ही न होती। यह बात भी देखने में आती है कि एक ही शब्द या वाक्य के विभिन्न अर्थ अपने-अपने शोध और ज्ञान के अनुसार विद्वानों ने लिखे हैं। इसी लिए एक-एक ग्रन्थ की कई-कई टीकाएँ विभिन्न विद्वानों के द्वारा लिखी गई। अत: वेदों की भी अनेक टीकाएँ और उनके अनेक अनुवाद मौजूद हैं और क़ुरआन तथा अन्य ग्रन्थों के भी। इस सम्बन्ध में उचित और न्यायसंगत नीति यह है कि किसी बात का कोई निष्कर्ष निकालने से पहले उसकी पृष्ठभूमि और सन्दर्भ को सामने रखा जाए तथा आवश्यकतानुसार टीकाओं से मदद ली जाए और देखा जाए कि टीकाकारों ने क्या व्याख्या की है। इसके बाद ही कोई निष्कर्ष निकालना उचित होगा। हम अपनी इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए बहुत-से उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, लेकिन विस्तार से बचने के लिए यहाँ केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत करना काफ़ी होगा :

हिन्दू धर्म के महान विद्वान और वेदों के भाष्यकार व टीकाकार पंडित क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने अथर्ववेद के श्लोक 20/93/1 का यह अनुवाद किया कि "वेद-द्वेषियों को नष्ट कर दे।" अगर कोई व्यक्ति या संस्था उक्त श्लोक के बाह्य शब्दों तथा अर्थों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल ले कि वेद अपने माननेवालों को आदेश देता है कि बौद्धों, जैनियों, सिखों, ईसाइयों, यहूदियों, मुसलमानों और उन असंख्य व्यक्तियों को हलाक व नष्ट कर दिया जाए जो वेदों में आस्था नहीं रखते, तो क्या इस नीति को उचित ठहराया जाएगा?

यह तो उन धार्मिक ग्रन्थों की बात है जिनके बारे में यह समझा और कहा जाता है कि वे परमेश्वर की ओर से आए हुए हैं और जिनके साथ उनके माननेवालों की आस्थाएँ जुड़ी होती हैं, क्या किसी व्यक्ति या संस्था को इस बात की अनुमति दी जा सकती है कि वे देश के संविधान और नियम एवं दण्ड सहिताओं की पुस्तकों के किसी शब्द या वाक्य के बाह्य अर्थ के आधार पर कोई मनमाना निष्कर्ष ग्रहण कर ले और उसकी पृष्ठभूमि, मार्गदर्शक सिद्धान्तों और उससे सम्बन्धित अन्य धाराओं को सामने न रखे। अगर यह नीति उचित

होती तो फिर संविधान एवं नियमों से सम्बन्धित बातों के स्पष्टीकरण, व्याख्या और उनके अर्थ निर्धारित करने के लिए संविधान एवं नियमों के विशेषज्ञों से राय लेने की आवश्यकता ही न पड़ती। अगर धार्मिक या क़ानूनी मामलों के साथ यह सजगता न बरती गई तो गम्भीर और भयावह परिस्थिति पैदा हो सकती है तथा यह नीति आग और पानी से खेलने जैसी हो सकती है।

जिहाद और युद्ध

आपत्तिकर्ता एक ग़लती यह करते हैं कि जिहाद और युद्ध को एक ही श्रेणी में रख देते हैं। ये लोग अध्ययन करने और किसी बात की वास्तविकता का पता लगाने का कष्ट नहीं करते। जिहाद का अर्थ वस्तुतः युद्ध व लड़ाई नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है जिद्दोजुहद करना, संघर्ष करना, जीतोड़ कोशिश करना, दबाव डालना और कठिनाइयाँ और कष्ट उठाना आदि। क़ुरआन मजीद में एक जगह कहा गया है :

"(ऐ पैग़म्बर) सत्य का इनकार करनेवालों का अनुसरण कदापि न करो और इस क़ुरआन को लेकर उनके साथ ज़बरदस्त जिहाद (प्रयत्न) करो।" (25 : 52)

क़ुरआन की इस आयत में जिहाद से अभिप्राय युद्ध और लड़ाई नहीं बल्कि प्रयत्न और जीतोड़ कोशिश करना है।

एक दूसरी जगह क़ुरआन में कहा गया :

"जिन लोगों की स्थिति यह है कि जब (इस्लाम को मानने के कारण) वे सताए गए तो उन्होंने घर-बार छोड़ दिए, हिजरत (देशत्याग) की, ईश्वरीय मार्ग में जिहाद किया (कष्ट उठाए) और धैर्य से काम लिया, उनके लिए इन बातों के बाद निस्सन्देह तेरा प्रभु क्षमाशील व दयावान है।" (16 : 110)

क़ुरआन की इस आयत में भी जिहाद से तात्पर्य कष्ट उठाना और कठिनाइयाँ झेलना है, न कि युद्ध और लड़ाई, जैसाकि सन्दर्भ से स्पष्ट है।

एक दूसरी जगह क़ुरआन में आया है :

"अगर वे (अर्थात् माता-पिता) तुझपर दबाव डालें कि तू किसी को मेरा

साझी बनाए, जिसका तुझे कोई ज्ञान नहीं तो उनकी (यह) बात कदापि न मान और दुनिया में उनके साथ अच्छा व्यवहार करता रह।"

(31 : 15)

क़ुरआन की इस आयत के मूल पाठ में अरबी शब्द 'जाहदा-क' प्रयुक्त हुआ है, जो जिहाद ही है, लेकिन यहाँ इसका अर्थ दबाव डालना है न कि युद्ध करना जैसा कि सन्दर्भ से साफ़ मालूम होता है।

एक दूसरी जगह क़ुरआन में है :

"जो व्यक्ति जिहाद (प्रयास) करेगा वह तो स्वयं अपने ही भले के लिए जिहाद (प्रयास) करेगा।" (29 : 6)

क़ुरआन में एक स्थान पर है :

"वे लोग जिन्होंने हमारे मार्ग में जिहाद (जीतोड़ कोशिश) किया उन्हें हम ज़रूर अपने मार्ग दिखाएँगे। निस्सन्देह ईश्वर उत्तम कार्य करने वालों के साथ है।" (29 : 69)

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का कथन है :

"सबसे बड़ा जिहाद अपने मन पर नियंत्रण पाना है।" (हदीस)

उपर्युक्त आयतों और हदीस के मूल पाठ में अरबी शब्द 'जिहाद' प्रयुक्त हुआ है लेकिन उसका अभिप्राय युद्ध नहीं है जैसा कि सन्दर्भ से स्पष्ट है।

अलबत्ता इसी जिद्दोजुहद और जीतोड़ कोशिश का एक रूप शक्ति का प्रयोग अर्थात् युद्ध भी है और क़ुरआन में जिहाद शब्द विभिन्न स्थानों पर युद्ध के लिए भी आया है। वैसे आमतौर पर युद्ध और लड़ाई के लिए क़ुरआन में 'क़िताल' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

जिहाद और युद्ध व लड़ाई से सम्बन्धित क़ुरआन मजीद की किसी आयत पर किसी को अगर वास्तव में कोई आपत्ति है तो उसे चाहिए कि जिस आयत पर आपत्ति है उससे पूर्व की कुछ आयतों को उसके बाद की कुछ आयतों के साथ मिलाकर पढ़े, इस तरह आमतौर पर आपत्ति स्वतः समाप्त हो जाएगी और यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि क़ुरआन ने जहाँ भी युद्ध करने या किसी को मृत्युदंड देने का आदेश दिया है, वे या तो युद्ध-सम्बन्धी आदेश हैं या फिर न्याय की स्थापना और धरती पर शान्ति स्थापित करने की अनिवार्य अपेक्षाओं की हैसियत से वे निर्देश दिए गए हैं। और यह बात किसी भी समाज या देश

में आपत्तिजनक नहीं समझी जाती, बल्कि देश में सुरक्षा, शान्ति और न्याय की स्थापना के लिए अनिवार्य ठहराई जाती है। दंगे-फ़साद का अवसर हो या चुनाव के समय बूथ (Booth) पर क़ब्ज़ा करने का, आतंकवादियों का मामला हो या किसी देश का किसी देश पर फ़ौजी हमले का, हर समाज और हर देश में ऐसे उपद्रवजनक तत्वों को देखते ही गोली मारने (Shoot at Sight) के आदेश दिए जाते हैं। कोई भी इस कार्यवाही को अत्याचार या हिंसा नहीं कहता। स्वयं हमारे देश में भी ऐसा ही होता है और सम्बन्धित अधिकारियों को वैधानिक तौर पर ऐसा करने का अधिकार प्राप्त है।

क़ुरआन मजीद में जहाँ कहीं भी इस तरह के निर्देश दिए गए हैं, वहाँ अगर उनके सन्दर्भ को देखा जाए तो मालूम होगा कि ये निर्देश उपर्युक्त परिस्थितियों में ही दिए गए हैं। उदाहरणस्वरूप यहाँ केवल कुछ नमूने प्रस्तुत किए जाते हैं। क़ुरआन मजीद में है :

"ईश्वरीय मार्ग में उन लोगों से युद्ध करो जो तुमसे युद्ध करते हैं मगर अत्याचार न करो। निस्सन्देह ईश्वर अत्याचार करनेवालों को पसन्द नही करता।" (2 : 190)

क़ुरआन की इस आयत में युद्ध से सम्बन्धित ऐसे क़ीमती, उपयोगी और कल्याणकारी सिद्धान्त बयान किए गए हैं, जिनका इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसे सिद्धान्त केवल वास्तविक प्रभु परमेश्वर की ओर से ही हो सकते हैं :

(1) इस्लामी राज्य को इस नियम का पाबन्द बनाया गया है कि युद्ध केवल ईश्वरीय मार्ग ही में किया जा सकता है, अर्थात् तुम्हारा युद्ध न तो अपने आर्थिक उद्देश्यों और हितों की पूर्ति के लिए हो, न अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए। ईश्वरीय मार्ग का मतलब है सत्य व न्याय का मार्ग, अमन व शान्ति की स्थापना, अपने वास्तविक प्रभु की इच्छा और उसकी बताई हुई ज़रूरत के लिए।

(2) केवल उन्हीं लोगों से युद्ध करने की अनुमति दी गई है जो तुमसे युद्ध करने को उद्यत हैं या जिन्होंने तुम्हारे ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया है।

(3) अगर युद्ध की नौबत आ जाए तब भी युद्ध की कुछ सीमाएँ और मर्यादाएँ हैं जिनको ध्यान में रखना ज़रूरी बताया गया है और उनका उल्लंघन

करनेवाले लोगों को सावधान किया गया है कि परमेश्वर ऐसे लोगों को पसन्द नहीं करता और जिन्हें परमेश्वर पसन्द नहीं करता उनका परिणाम पारलौकिक जीवन में दर्दनाक सज़ा और नरक की यातना है, जैसा कि क़ुरआन मजीद की बहुत-सी आयतों में सूचित किया गया है।

युद्ध की क्या सीमाएँ हैं और वे बातें कौन-सी हैं जिनको सामने रखना वास्तविक शासक परमेश्वर ने अनिवार्य बताया है, ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन और ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के कथनों (हदीसों) में उन्हें विस्तार से बयान किया गया है। मिसाल के तौर पर यह कि दुश्मनों की औरतों, बच्चों, बूढ़ों तथा ज़ख़्मियों पर हाथ न उठाया जाए। जो लोग पूजा-पाठ और उपासना में व्यस्त हैं उन्हें किसी प्रकार की हानि न पहुँचाई जाए। फ़सलों और पेड़ों को नष्ट न किया जाए और न जानवरों को मारा जाए। दुश्मनों की लाशों के अंग भंग न किए जाएँ आदि।

युद्ध के समय इन सीमाओं और निर्देशों की पाबन्दी न करने पर परमेश्वर ने यह चेतावनी दी है कि तुम्हारी सारी मेहनत और सारी क़ुरबानियाँ निरर्थक सिद्ध होंगी, बल्कि उलटे तुम अपराधी और ईश्वरीय प्रकोप के भागी होगे।

यह बात भी सामने रहनी चाहिए कि इस्लाम ने अगर एक तरफ़ भले कामों के करने पर स्वर्ग की ख़ुशख़बरी दी है तो दूसरी तरफ़ ईश्वर की अवज्ञा करने और बुरे काम करने पर पारलौकिक जीवन में दर्दनाक यातना से डराया भी है। इस्लाम ने परलोक की इसी धारणा और विश्वास के आधार पर अपनी शिक्षाओं पर चलने का आदेश दिया है। यह विशेषता केवल इस्लाम को प्राप्त है। इसमें कोई सन्देह नही कि जिस व्यक्ति के दिल और दिमाग़ में परलोक की यह धारणा बैठ जाएगी वह कभी भी और कहीं भी जानते-बूझते कोई ग़लत कार्य करने का दुस्साहस नहीं कर सकता।

इस दुनिया के विधानों में अन्याय व अत्याचार करनेवालों को केवल इस दुनिया ही में सज़ा दिए जाने का प्रावधान है। परलोक की तो कल्पना तक वहाँ नही है और फिर बहुत-से लोग तो पुलिस और फ़ौज के अत्याचारों को अत्याचार ही नही समझते। क्योंकि ऐसा समझने में उन्हें आशंका होती है कि सरकार के इन कर्मचारियों और अधिकारियों का मनोबल गिर जाएगा। परन्तु इस्लाम का मामला इससे भिन्न है। वह आम जनता तथा पुलिस-फ़ौज सबको

एक ही दर्जे में रखता है और ज़ुल्म और अत्याचार करनेवाले की न केवल दुनिया में पकड़ करता है, बल्कि उसे आख़िरत की दर्दनाक यातना से भी डराता है। यह वास्तविकता क़ुरआन की उपर्युक्त आयत से भी स्पष्ट है और आगे भी ऐसी आयतें आ रही हैं।

क़ुरआन मजीद में एक अन्य स्थान पर है :

"और तुम ईश्वरीय मार्ग में उन बेबस व उत्पीड़ित मर्दों, औरतों और बच्चों के लिए क्यों नहीं लड़ते (जो कमज़ोर हैं, दबा लिए गए हैं और अत्याचार सहते-सहते बदहाल हो चुके हैं और) जो फ़रियाद कर रहे हैं कि, ऐ हमारे प्रभु! तू हमें इस बस्ती से निकाल जिसके लोग अत्याचारी हैं और तू अपनी ओर से हमारे लिए संरक्षक पैदा कर, और अपनी तरफ़ से किसी को हमारा मददगार बना।" (4 : 75)

क़ुरआन मजीद में एक स्थान पर कहा गया :

"जिन लोगों के विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है (अर्थात् इस्लाम के अनुयायियों के विरुद्ध) उन्हें भी लड़ने की अनुमति दे दी गई है, क्योंकि उनपर अत्याचार हुआ है। और परमेश्वर उनकी मदद की निस्सन्देह सामर्थ्य रखता है। ये वे लोग हैं जो अपने घरों से बेक़ुसूर निकाले गए। उनका क़ुसूर सिर्फ़ यह था कि वे परमेश्वर को अपना पालनहार प्रभु कहते थे।" (22 : 39-40)

आरम्भ में क़ुरआन की जिस आयत की व्याख्या में हमने ये बातें प्रस्तुत की हैं उस आयत के बाद की कुछ आयतें भी यहाँ प्रस्तुत हैं जिनसे वस्तुस्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है :

"जो लोग तुमसे युद्ध कर रहे हैं उनसे ईश्वरीय मार्ग में युद्ध करो मगर युद्ध में अन्याय व अत्याचार न करना, क्योंकि परमेश्वर अन्याय व अत्याचार करनेवालों को पसन्द नहीं करता। उनसे लड़ो जहाँ भी तुम्हारा उनसे मुक़ाबला हो और जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है वहाँ से उन्हें निकालो, क्योंकि क़त्ल यद्यपि बुरा है लेकिन फ़ितना (उपद्रव एवं षड्यंत्र) उससे भी ज़्यादा बुरा है। फिर जब तक वे तुमसे मस्जिदे हराम (प्रतिष्ठित मस्जिद काबा) के निकट युद्ध न करें, तुम भी उसके पास उनसे युद्ध न करो। लेकिन अगर वे तुमसे वहाँ युद्ध करें तो तुम भी

उन्हें मारो, क्योंकि ऐसे काफ़िरों (अधर्मियों) की यही सज़ा है। फिर अगर वे रुक जाएँ तो (तुम भी रुक जाओ और) जान लो कि परमेश्वर बड़ा क्षमा करनेवाला दयावान है। तुम उनसे युद्ध किए जाओ यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और आज्ञापालन केवल परमेश्वर के लिए हो जाए। फिर अगर वे रुक जाएँ तो (तुम भी रुक जाओ और) जान लो कि सज़ा अत्याचारियों के सिवा और किसी के लिए नहीं है। प्रतिष्ठित महीना बराबर है प्रतिष्ठित महीने के और समस्त शिष्टाचारों एवं प्रतिष्ठाओं का भी बराबरी का बदला है। अत: जो कोई तुमपर अत्याचार करे उससे तुम भी उतना ही बदला ले सकते हो, मगर परमेश्वर से डरते रहो और जान लो कि परमेश्वर केवल उसका डर रखनेवाले परहेजगारों के साथ है (जो उसकी सीमा का उल्लघंन नहीं करते)।"

(2 : 190-194)

क़ुरआन पर आपत्ति करनेवालों ने क़ुरआन मजीद की उपर्युक्त आयतों को पूर्ण रूप से पेश करने के बजाए अपने घृणित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनके बीच से वाक्य नक़ल किए हैं कि "काफ़िरों को जहाँ पाओ क़त्ल करो", "फ़ितना क़त्ल से ज़्यादा बुरा है", "तुम उनसे बराबर युद्ध किए जाओ यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और धर्म केवल अल्लाह के लिए हो जाए।" . . . आदि। हालाँकि कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति क़ुरआन की इन सम्पूर्ण आयतों को एक साथ मिलाकर पढ़ेगा और उन हालात को अपने सामने रखेगा जिनमें यह बात कही जा रही है तो वह कदापि वह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता जो आपत्ति करनेवाले हमारे इन नादान भाइयों ने निकाला है कि क़ुरआन मुसलमानों को यह आदेश देता है कि ग़ैर-मुस्लिमों को क़त्ल कर दिया जाए।

वास्तविकता यह है कि क़ुरआन मजीद में कुफ़्र (इनकार) करनेवालों और शिर्क करनेवालों से युद्ध और लड़ाई करने की जो बात कही गई है वह इस वजह से नहीं है कि वे शिर्क करनेवाले या कुफ़्र (इनकार) करनेवाले हैं, बल्कि यह निर्देश इसलिए दिया गया है कि इन लोगों ने ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके अनुयायी मुसलमानों का जीवन दूभर कर दिया था। उनपर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। दहकते अँगारों पर उन्हें नंगी पीठ लिटाकर भारी पत्थर उनपर रख देते थे, तपती रेत में नंगा करके उन्हें घसीटते

थे, लोहे की गर्म छड़ों से उनके शरीर को दाग़ते थे, उनकी औरतों के साथ अत्यन्त घिनौना और अपमानजनक व्यवहार करते थे। उनका सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करते कि ये बेचारे (ईशदूत और उसके अनुयायी) पेड़ों के पत्ते खाने और सूखे चमड़े भिगोकर चबाने पर विवश होते। इन दुष्टों का दुस्साहस यहाँ तक बढ़ गया था कि ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की हत्या कर डालने की असफल साज़िश तक इन्होंने कर डाली। इन दुष्टों ने ईशदूत और उसके अनुयायियों को उनके अपने घरों से निकल जाने पर विवश कर दिया था और उसपर और अधिक सितम यह कर रहे थे कि ईमानवालों ने इन दुष्टों के अत्याचारों से बचने के लिए जिन जगहों और देशों में पनाह ले रखी थी ये दुष्ट वहाँ भी बार-बार उनपर हमला करते थे। ये लोग ईमानवालों का बिलकुल सफ़ाया कर देने पर तत्पर थे तथा अन्य क़बीलों, गिरोहों और क़ौमों से भी अपने इन घृणित और दुष्टतापूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता लेते थे। यह तथ्य ईशदूत के हालात और क़ुरआन की उन आयतों की पृष्ठभूमि और सन्दर्भ से बिलकुल स्पष्ट है जिनमें युद्ध और लड़ाई की बात की गई है।

ये सारे अत्याचार ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके अनुयायियों पर वे केवल इसलिए करते थे कि ये लोग ईश्वर को एक मानते और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को ईशदूत स्वीकार करते थे। वे ईश्वर के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करते, शराब, जुआ, अश्लीलता, लड़कियों पर अत्याचार करने, लड़ाई-झगड़ा और अन्य सामाजिक और नैतिक बुराइयों से दूर रहते थे।

तनिक ईमानदारी से विचार करें कि क्या ऐसे दुष्टों और अत्याचारियों पर फूलों की बारिश करने का निर्देश देना चाहिए?

क़ुरआन मजीद ने स्वयं अत्यन्त स्पष्ट रूप से बार-बार यह बात बताई है कि किसी व्यक्ति को भी इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता और न ही किसी व्यक्ति को इस्लाम स्वीकार न करने के कारण मृत्यु-दण्ड अथवा अन्य कोई सज़ा दी जा सकती है। अगर कोई व्यक्ति ज़ोर-ज़बरदस्ती से इस्लाम स्वीकार कर भी ले तो उसकी यह स्वीकृति और उसका यह ईमान विश्वास के योग्य न होगा। परमेश्वर के निकट तो सिरे से ऐसा ईमान मान्य ही नहीं है, क्योंकि ईमान के लिए अनिवार्य शर्त दिल की आमादगी और इच्छा है। तलवार से या बलपूर्वक यह कार्य नहीं किया जा

सकता। क़ुरआन ने अपनी शिक्षा और सन्देश को प्रमाणों सहित अत्यन्त स्पष्ट रूप में पेश करने के बाद इनसान को उसे स्वीकार या अस्वीकार करने की पूर्ण स्वतत्रंता दी है। इस विषय पर और अधिक प्रकाश हम आगे "क़ुरआन और धार्मिक स्वतत्रंता" शीर्षक के अन्तर्गत डालेंगे।

एक आवश्यक स्पष्टीकरण

यहाँ यह बात भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि युद्ध या दण्ड सम्बन्धी ये आदेश क़ुरआन ने अपने अनुयायियों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग नहीं दिए हैं, बल्कि ये निर्देश इस्लामी राज्य और सत्ताधारी वर्ग को दिए गए हैं तथा इनको व्यावहारिक रूप देने के लिए एक न्यायिक और प्रशासनिक प्रणाली भी दी गई है। कितने अफ़सोस की बात है कि आपत्ति और आक्षेप करनेवाले अपनी बात को इस ढंग से पेश करते हैं, मानो प्रत्येक मुसलमान को व्यक्तिगत रूप में किसी को मृत्युदण्ड देने या किसी उपद्रवी की हत्या करने का अधिकार और आदेश क़ुरआन ने दिया है। आक्षेपकर्त्ताओं की यह नीति सत्य और न्याय की अपेक्षाओं के विरुद्ध और उन्हें मुँह चिढ़ानेवाली है।

माले ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त माल)

क़ुरआन मजीद में युद्ध में प्राप्त माल के सम्बन्ध में, जिसे पारिभाषिक शब्दावली में 'माले-ग़नीमत' कहा जाता है, आदेश एवं निर्देश दिए गए हैं। लेकिन ज़बरदस्ती की आपत्ति और आक्षेप करनेवाले सत्य और न्याय को पीठ पीछे डालकर एक भ्रामक प्रचार यह करते हैं कि क़ुरआन मुसलमानों को लूट-खसोट का आदेश देता है। सूझ-बूझ और बुद्धि रखनेवाला प्रत्येक आदमी इस बात से परिचित है कि दुनिया के हर देश में युद्ध में प्राप्त माल को इस्तेमाल करना बिलकुल वैध माना जाता है और स्वयं हिन्दू धर्म में भी इसे वैध ठहराया गया है।

हिन्दू धर्म में युद्ध-सम्बन्धी निर्देश

इस समय हमारे सामने कुरआन मजीद पर आपत्ति और आक्षेप करनेवाले वे लोग हैं जो हिन्दू धर्म को मानने का दावा करते हैं, इसलिए यह जानना उचित होगा कि स्वयं हिन्दू धर्म में युद्ध, लड़ाई और माले-ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त माल) के सम्बन्ध में क्या आदेश एवं निर्देश दिए गए हैं। इस सिलसिले में हम यहाँ केवल कुछ उदाहरण ही प्रस्तुत करेंगे :

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥2॥

(अथर्ववेद 6-32-2)

"हे मांसभक्षक ! (रोगो व प्राणियो) दुखनाशक सेनापति ने तुम्हारे गले को तोड़ डाला है। हे पीड़ादायको ! तुम्हारी पसलियाँ भी तोड़े। सब ओर से सामर्थ्यवाली विविध प्रकार से प्रकापित होनेवाली शक्ति (परमेश्वर) ने तुमको नियम के साथ संयुक्त किया है।" [2]

इस श्लोक का भावार्थ बयान करते हुए वेदों के टीकाकार श्री पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी लिखते हैं :

"प्रतापी राजा दुखदायक शत्रु और रोगों का सदा प्रतिकार करे। उस परमात्मा ने सबके कर्मों को वेद द्वारा नियमबद्ध किया है।" [3]

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥3॥

(अथर्ववेद 6-66-3)

"शत्रु लोग निहत्थे हो जावें, उनके अंगों को हम शिथिल करते हैं। फिर हे महाप्रतापी सेनापति इन्द्र ! उनके सब धनों को सैकड़ों प्रकार से हम बांट लेवें।" [4]

पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी इस श्लोक का भावार्थ बयान करते हुए लिखते है :

"विजयी वीर पुरुष शत्रुओं को जीतकर सेनापति की आज्ञानुसार राजविभाग निकालकर उनका धन बाँट लेवें।" [5]

ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि।

पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु॥ **(अथर्ववेद 6-67-3)**

"(हे सेनापति!) इन (अपने वीरों) में ऐश्वर्यवान पुरुष को चर्म (कवच) पहिना दे और (शत्रुओं में) हरिण का डरपोकपन कर दे। शत्रु उलटे मुख होकर चला जावे, भूमि (युद्ध भूमि और राज्य) हमारी ओर चली आवे।" [6]

एवा त्वं देव्यध्न्य ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना॥

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि॥

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि॥

सर्वास्याङ्ग पर्वाणि वि श्रथय॥ **(अथर्ववेद 12 : 5 : 65-71)**

"हे देवी! (उत्तम गुणवाली), हे अवध्य (न मारने योग्य प्रबल वेद वाणी)! तू इसी प्रकार ब्रह्मचारियों के हानिकारक, अपराध करनेवाले, विद्वानों के सतानेवाले, अदानशील पुरुष के ॥65॥ सैकड़ों जोड़वाले, तीक्ष्ण छुरे की-सी धारवाले, वज्र से ॥66॥ कन्धों और शिर को तोड़-तोड़ दे ॥67॥ उस (वेद-विरोधी) के लोमों को काट डाल, उसकी खाल उतार ले ॥68॥ उसके मांस के टुकड़ों को बोटी-बोटी कर दे, उसके नसों को ऐंठ दे ॥69॥ उसकी हड्डियाँ मसल डाल, उसकी मींग (निर्जहि) निकाल दे ॥70॥ उसके सब अंगों और जोड़ों को ढीला कर दे।"[7]

वेद के उपरोक्त श्लाकों में से 65-67 का भावार्थ बयान करते हुए पंडित क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी लिखते हैं :

"वेदानुयायी धर्मात्मा राजा वेदविरोधी दुष्टाचारियों को प्रचण्डदण्ड देवे।"

तथा उपरोक्त श्लोकों में से 68-71 का भावार्थ यह बयान करते हैं :

"नीति निपुण धर्मज्ञ राजा वेद मार्ग पर चलकर वेद विमुख अत्याचारी लोगों को विविध प्रकार दण्ड देकर पीड़ा देवे।" [8]

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥

(अथर्ववेद 6-67-2)

"हे घबड़ाए हुए, पीड़ा देनेवाले शत्रुओ! बिना शिरवाले (शिर कटे) साँपों के समान चेष्टा करो। प्रतापी वीर राजा अग्नि (आग्नेय शस्त्रों) से घबड़ाए हुए, उन तुम सबों में से अच्छे-अच्छों को चुनकर मारे।" [9]

इस श्लोक का भावार्थ बयान करते हुए वेदों के टीकाकार पंडित क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी लिखते हैं :

"कुशल सेनापति इस प्रकार व्यूह रचना करे कि शत्रु के सेनादल विध्वंस होकर घबड़ा जावें और उनके बड़े-बड़े नायक मारे जावें।" [10]

पियारूणां प्रजां जहि **(अथर्ववेद 11-2-21)**

"हिंसकों की प्रजा (जनता) को मार।" [11]

अव ब्रह्मद्विषो जहि **(अथर्ववेद 20-93-1)**

"वेद-द्वेषियों को नष्ट कर दे।" [12]

त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ **(अथर्ववेद 20-105-1)**

"तू मारनेवाले शत्रुओं को मार।" [13]

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् **(अथर्ववेद 20-74-7)**

"(हे राजन्!) प्रत्येक निन्दक, कष्ट देनेवाले को पहुँच और मार डाल।" [14]

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया॥ **(अथर्ववेद 20-74-5)**

"हे इन्द्र (बड़े प्रतापी राजन्)! उस प्रक्रिया के साथ स्तुति करते हुए गदहे (के समान व्यर्थ रेंकनेवाले निन्दक पुरुष) को मार डाल।" [15]

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन **(अथर्ववेद 19-45-1)**

"हे अञ्जन! आँख के इशारे से हानि करनेवाले, दुष्ट हृदयवाले की पसलियों को तोड़॥" [16]

जितमस्माकम् **(अथर्ववेद 10-5-36)**

"जो जीत लिया गया वह सब हमारा है।" [17]

छत्रूयतामा भरा भोजनानि **(अथर्ववेद 4-22-6)**

"शत्रु जैसा आचरण करनेवालों के भोजन के साधन यहाँ ला।" [18]

श्री कृष्ण जी कहते हैं :

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥32॥
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥33॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥34॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2 : 32-34)

"हे पार्थ (अर्जुन) ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। और यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा तो स्वधर्म को और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा और सब लोग तेरी बहुत काल तक रहनेवाली अपकीर्ति को भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरण से भी अधिक बुरी होती है।" [19]

यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु॥
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत्॥

(मनुस्मृति, 7 : 95-96)

"युद्ध में भागनेवाले के परलोक के लिए संचित सभी पुण्य उसके स्वामी को प्राप्त होते हैं। रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्री (दासी आदि), गुड़, नमक द्रव्य (चाँदी, सोना छोड़कर) ताँबा, पीतल

आदि द्रव्य इनमें जिस वस्तु को जो जीतकर लाता है वह उसी का होता है।" [20]

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।

राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥ (मनुस्मृति, 7 : 97)

"योद्धा युद्ध में जीते हुए हाथी, घोड़े, रथ आदि सब कुछ राजा को अर्पित कर दे; यह वेद का वचन है। सभी सैनिकों द्वारा एक साथ जीता हुआ जो धन हो उसे राजा सैनिकों में बाँट दे।" [21]

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।

वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥

(मनुस्मृति, 7 : 106)

"बगुले की तरह धन लेने की चिंता करे, सिंह के समान पराक्रम करे, भेड़िए की भाँति अवसर पाकर शत्रु को मार डाले और बलवान शत्रु से घिर जाने पर खरहे (खरगोश) की भाँति निकल भागे।" [22]

हनुमान जी के द्वारा लंका-दहन, सीता जी को मुक्त कराने के लिए श्री रामचन्द्र जी का लंका पर आक्रमण और एक ही कुटुम्ब, पांडवों और कौरवों, के बीच भयानक ख़ूनी महाभारत के युद्ध की घटनाएँ और उनके विवरण किसी से छिपे नहीं हैं। आपत्तिकर्ता हमारे ये भाई उनके बारे में हम से अधिक जानकारी रखते हैं। हमने यहाँ केवल कुछ नमूने ही पेश किए हैं अन्यथा इस क्रम की शिक्षाएँ, आदेश और निर्देश वेदों, गीता, मनुस्मृति और अन्य ग्रन्थों में बहुतायत के साथ मौजूद हैं। हिन्दू धर्म की इन शिक्षाओं और आदेशों की पृष्ठभूमि और सन्दर्भ को ध्यान में रखे बिना सिर्फ़ उनके शब्दों के बाह्य अर्थों को देखकर कोई व्यक्ति अपना मनमाना निष्कर्ष निकालने लगे तो क्या क़ुरआन पर आपत्ति करने वाले हमारे ये भाई इस नीति को उचित ठहराएँगे ?

सोचने का सही ढंग

क़ुरआन मजीद की शिक्षाओं पर आपत्ति और आक्षेप करनेवालों से हमारा निवेदन है कि अगर वे वास्तव में न्याय एवं सत्य को कुछ भी महत्व देते हैं और वास्तविकता को जानने के इच्छुक हैं तो वे सबसे पहले क़ुरआन मजीद को

लानेवाले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी का **अध्ययन करें और** फिर एक बार क़ुरआन मजीद का पूरा अनुवाद पढ़ डालें, उसके **बाद वे ख़ुद ही** फ़ैसला करें कि ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और क़ुरआन **मजीद का मूल** उद्देश्य **क्या** है ? आपकी दृष्टि में इन दोनों की हैसियत **क्या क़रार पाती है ?** फिर आप कोई भी नतीजा निकालने के लिए स्वतंत्र हैं।

अगर ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी और क़ुरआन **मजीद के** अध्ययन के बाद आप इस निष्कर्ष पर पहुँचें (और अवश्य पहुँचेंगे) कि **वास्तव** में उनका उद्देश्य तो दुनिया में न्याय और सत्य की स्थापना करना, इनसान **को** वास्तविक शान्ति और सफलता उपलब्ध कराना है और उसे एक अच्छा इनसान और एक आदर्श नागरिक बनाना है, परन्तु इसके साथ यदि उनकी कुछ शिक्षाएँ आपको खटकें तो फिर ऐसी स्थिति में आपके सोचने का ढंग बिलकुल भिन्न होगा। आप उन आपत्तिजनक बातों का निवारण, जो किसी कारणवश आपकी समझ में नहीं आ रही हैं, सही सोच और सकारात्मक ढंग से करेंगे और उन शिक्षाओं के ऐसे अर्थ निर्धारित करेंगे जो मूल उद्देश्य से मेल खाते हों। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ एक उदाहरण आपके सामने पेश करते है :

आप एक अध्यापक हैं और किसी छात्र को उसकी किसी ग़लती पर उसे सज़ा दे रहे हैं। एक अजनबी व्यक्ति जो इस बात से अनभिज्ञ है कि आप एक अध्यापक हैं और वह आपको एक साधारण इनसान समझ रहा है तथा आपके द्वारा उस छात्र को सज़ा दिए जाने के दृश्य को देख रहा है। ऐसा व्यक्ति आपके इस कार्य को एक निन्दनीय कार्य समझेगा और जगह-जगह इस बात को बयान करेगा कि "आज मैंने एक अत्याचारी मनुष्य को देखा जो एक अबोध बालक को सज़ा दे रहा था।" परन्तु अगर उस व्यक्ति को यह मालूम हो जाए कि आप एक अध्यापक हैं और अध्यापक की हैसियत से किसी ग़लती पर—चाहे वह ग़लती उस व्यक्ति पर स्पष्ट न हो—उस बच्चे को सज़ा दे रहे हैं तो आपकी यह स्थिति स्पष्ट होने के बाद सिरे से उसके मन में यह विचार आएगा ही नहीं कि आप अत्याचारी मनुष्य हैं जो किसी बच्चे पर ज़ुल्म कर रहे हैं। इस स्थिति में वह व्यक्ति किसी से इसकी चर्चा तक नहीं करेगा।

एक ही घटना में व्यक्ति उस घटना की पृष्ठभूमि ज्ञात न होने के कारण एक

निष्कर्ष निकालता है और पृष्ठभूमि और उद्देश्य मालूम हो जाने के बांद उसके विपरीत बिलकुल दूसरा निष्कर्ष निकालता है।

इस तरह के अनगिनत उदाहरण हमारे सामने आते हैं—कहीं जेल में कष्ट झेलते लोग हैं, कहीं फाँसी के फंदे पर किसी को लटकाया जा रहा है, कहीं पुलिस को मार-पीट करते हुए हम देखते हैं और कहीं फ़ौजी वर्दी में बन्दूक़धारी सैनिकों को इनसानों को निशाना बनाते देखा जा सकता है। चूँकि इन सब घटनाओं की पृष्ठभूमि और इन लोगों की हैसियत हमारे सामने होती है इसलिए यह बात हमारे मन में कभी नहीं खटकती कि इतने सारे लोगों को जेल की सलाख़ों और कोठरियों में क्यों बन्द रखा गया है? यह तो बड़ा ज़ुल्म है! फ़लाँ हत्यारे, आतंकवादी और फ़सादी को फाँसी क्यों दी गई? यह तो बड़ी हिंसा की बात है! सुरक्षा बल आतंकवादियों और उपद्रवियों को गोलियों से क्यों भून रहे हैं? यह तो बड़ी निर्दयता है! देश की सीमाओं पर फ़ौजी जवान दुश्मनों को क्यों ढेर कर रहे हैं? यह तो इनसानों पर बड़ा अत्याचार है!

ऐसे अवसरों पर सभी लोग एक आवाज़ होकर उचित तौर पर यही कहते हैं कि ये अप्रिय कार्य उस बड़े उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करने पड़ रहे हैं, जिसे हम सत्य व न्याय और अमन व शांति कहते हैं।

गुलाब के फूल की हर एक प्रशंसा करता है, लेकिन उसके काँटों का कोई ज़िक्र नहीं करता, क्यों? यह इसलिए कि गुलाब की हैसियत और उसका उद्देश्य सब पर स्पष्ट होता है। काँटे उस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनते हैं। चाहे यह बात हर किसी की समझ में आए या न आए।

इसी उसूल पर आप क़ुरआन मजीद के युद्ध एवं दण्ड सम्बन्धी आदेशों का जायज़ा लेंगे तो आमतौर पर इस सम्बन्ध में आपकी हर आपत्ति ख़ुद-बख़ुद दूर हो जाएगी।

क़ुरआन मजीद का उद्देश्य इनसान को लोक-परलोक में सफलता दिलाना और सत्य और न्याय की स्थापना है और अमन व शांति का माहौल पैदा करना है। ऐसे सिद्धान्त और नियम इनसानों को देना है जिनपर चलकर यह उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। क़ुरआन मजीद इनसानों के स्रष्टा और स्वामी की ओर से भेजी हुई किताब है जो उनके पूरे जीवन के लिए मार्गदर्शक है। इनसान के जीवन से युद्ध-सम्बन्धी मामले भी जुड़े हुए हैं और प्रतिदिन के

सामान्य अनुशासन एवं सुरक्षा सम्बन्धी मामले भी। क़ुरआन मजीद में इन सब के बारे में जो आदेश और निर्देश दिए गए हैं उन्हें इसी पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए।

क़ुरआन और ग़ैर-मुस्लिम

कुछ संस्थाओं और लोगों ने यह झूठा प्रचार किया है और निरन्तर किए जा रहे हैं कि क़ुरआन ग़ैर-मुस्लिमों को सहन नहीं करता। उन्हें मार डालने और जड़-मूल से ख़त्म कर देने की शिक्षा देता है।

क़ुरआन मजीद की शिक्षाएँ समाज, देश तथा आम इनसानों, विशेषकर ग़ैर-मुस्लिमों के सम्बन्ध में क्या हैं, संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। इससे यह अंदाज़ा हो सकेगा कि क़ुरआन की शिक्षाएँ मानव समाज के लिए कितनी अधिक कल्याणकारी हैं और आपत्तिकर्त्ताओं का दुष्प्रचार कितना अन्यायपूर्ण, दुर्भाग्यपूर्ण और भ्रामक है।

क़ुरआन मजीद में स्पष्ट रूप से कहा गया है :

"ज़मीन में बिगाड़ पैदा न करो।" (2 : 11)

एक अन्य स्थान पर क़ुरआन में है :

"जो कुछ परमेश्वर ने तुझे दिया है उसमें परलोक का घर बनाने का इच्छुक हो और दुनिया में अपना हिस्सा मत भूल और भलाई कर जैसेकि परमेश्वर ने तेरे साथ भलाई की है और ज़मीन में बिगाड़ और फ़साद पैदा करने की कोशिश मत कर। निस्सन्देह परमेश्वर बिगाड़ व फ़साद पैदा करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (28 : 77)

क़ुरआन में एक जगह ईशदूत के द्वारा कहलवाया गया :

"(ईशदूत ने कहा :) ऐ मेरी क़ौम के लोगो ! न्याय के साथ ठीक-ठीक पूरा नापो और तौलो और लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा मत दो और ज़मीन में बिगाड़ व फ़साद न फैलाते फिरो।" (11 : 85)

क़ुरआन में एक जगह है :

"वह परलोक का घर है जिसे हम उन लोगों को देंगे जो ज़मीन मे

अपनी बड़ाई नहीं चाहते और न बिगाड़ पैदा करना चाहते हैं। और कामयाबी तो परहेज़गारों और ईशभय रखनेवाले लोगों के लिए है।"

(28 : 83)

क़ुरआन ने दुश्मनों तक से न्याय और इनसाफ़ करने का आदेश दिया है :

"हे ईमानवालो। परमेश्वर के लिए सत्य पर जमे रहनेवाले, न्याय की गवाही देनेवाले बनो। किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर उद्यत न कर दे कि तुम न्याय का दामन छोड़ दो। तुम्हें चाहिए कि हर दशा में न्याय करो। यही ईशभय और धर्मपरायणता से मेल खाती बात है। परमेश्वर का भय रखो, जो कुछ तुम करते हो निस्सन्देह परमेश्वर को उसकी ख़बर है।" (5 : 8)

क़ुरआन में एक जगह परमेश्वर ने यह आदेश दिया :

"भलाई और बुराई बराबर नहीं हुआ करतीं। तुम्हें चाहिए कि (बुराई का) जवाब भले तरीक़े से दो (इस आचरण के बाद) तुम देखोगे कि जिससे तुम्हारी दुश्मनी थी वह तुम्हारा आत्मीय मित्र बन गया है।"

(41 : 34)

भले कामों में ग़ैर-मुस्लिमों के साथ सहयोग करने के सम्बन्ध में क़ुरआन में परमेश्वर का आदेश है :

"ऐसा कदापि न हो कि किसी गिरोह की दुश्मनी कि उन्होंने तुम्हें प्रतिष्ठित मस्जिद (काबा) से रोका था, तुम्हें इस बात पर उभारे कि तुम उनके साथ अत्याचार व अन्याय करने लगो। भलाई और ईशपरायणता के कामों में तुम सहयोग दो। लेकिन पाप और अत्याचारपूर्ण कामों में सहयोग न दो। परमेश्वर से डरते रहो, निस्सन्देह परमेश्वर (अवज्ञा पर) सज़ा देने में अत्यन्त कठोर है।" (5 : 2)

क़ुरआन मजीद में सारे ही इनसानों के साथ धर्म और समुदाय का भेद किए बिना न्याय करने, उनके साथ उपकार और सद्भाव का व्यवहार करने, ज़मीन में बिगाड़ और उपद्रव न फैलाने और सारे ही इनसानों की जान और माल का आदर करने के इसी प्रकार के आदेश जगह-जगह दिए गए हैं।

क़ुरआन मजीद में हमारे स्रष्टा और प्रभु ने यह कल्याणकारी सिद्धान्त भी लोगों को दिया है :

"जिसने किसी व्यक्ति की किसी के ख़ून का बदला लेने या धरती में उपद्रव और तबाही फैलाने के सिवा किसी और कारण से हत्या की मानो उसने सारे ही इनसानों की हत्या कर डाली। और जिसने उसे जीवन प्रदान किया उसने सारे ही इनसानों को जीवन प्रदान किया।"

(5 : 32)

क़ुरआन ने सदा के लिए यह नियम बना दिया कि किसी भी इनसान को चाहे उसका सम्बन्ध किसी भी धर्म या समुदाय से हो मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता। हाँ ! सिर्फ़ दो तरह के लोगों के साथ ऐसा किया जा सकता है :

एक हत्यारे को मृत्युदंड दिया जा सकता है। दूसरे उस व्यक्ति को मृत्युदंड दिया जा सकता है जो समाज या देश की शान्ति और सुरक्षा भंग करने पर तुला हो और उसने धरती में तबाही मचा रखी हो।

क़ुरआन की इस आयत में यह भी स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि किसी व्यक्ति की अकारण और अन्यायपूर्ण हत्या एक व्यक्ति की हत्या नहीं, बल्कि वह सम्पूर्ण मानव-जाति की हत्या करने जैसी है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के प्राण बचाना सम्पूर्ण मानव-जाति के प्राणों की रक्षा करना है।

कितनी उच्च और कल्याणकारी है यह शिक्षा ! इसपर तो पूरी मानवता को क़ुरआन मजीद का आभारी होना चाहिए।

ग़ैर-मुस्लिम रिश्तेदारों से मेल-जोल और क़ुरआन

क़ुरआन मजीद की इस आयत पर भी कुछ लोग आपत्ति करते हैं, जिसमें कहा गया है :

"ईमानवालो ! अपने बापों और भाइयों को अपना संरक्षक मित्र न बनाओ, अगर वे ईमान के मुक़ाबले में कुफ़्र को पसन्द करें।" (9 : 23)

यह आपत्ति भी पृष्ठभूमि और सन्दर्भ का लिहाज़ न करने और बात को न समझने के कारण की गई है। अगर सन्दर्भ पर तनिक भी विचार किया जाए तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि यहाँ भी परिस्थितियाँ इस्लाम और उसके दुश्मनों के बीच सख़्त संघर्ष की हैं। इस्लाम के दुश्मन मुसलमानों और इस्लाम को जड़-बुनियाद से उखाड़ देने को तत्पर हैं और ग़ैर-मुस्लिम दुश्मन अपने मुसलमान रिश्तेदारों से मेलजोल करके इस्लाम के विरुद्ध

साज़िशों की स्कीमें बना रहे हैं। ऐसी गंभीर परिस्थितियों में जबकि इस्लाम और मुसलमानों का अस्तित्व ख़तरे में है, परमेश्वर ने मुसलमानों को चौकन्ना और सावधान करते हुए यह आदेश दिया है कि वे अपने उन रिश्तेदारों तक को, जो इस्लाम की दुश्मनी पर तुले हुए हैं, अपना राज़दार और सरंक्षक न बनाएँ और इस तरह दुश्मनों की साज़िशों को असफल कर दें। ऐसी गंभीर और आपात परिस्थितियों में क़ुरआन का यह निर्देश कितना सही और बुद्धिसंगत है इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थितियों में इसी प्रकार के आदेश और निर्देश पूरी दुनिया में दिए जाते हैं और उनपर किसी को कभी कोई आपत्ति नहीं होती। स्वयं हमारे देश में अगर समाज और देश के किसी दुश्मन, किसी अपराधी और आतंकवादी को उसका कोई दोस्त, नातेदार और रिश्तेदार सरंक्षक और सहयोगी बनाता है या उसे शरण देता है तो उस शरण देनेवाले को भी अपराधी ठहराया जाता है और उसे अपराध में मददगार समझा जाता है। क़ुरआन मजीद का यह आदेश बिलकुल इसी प्रकार का आदेश है। क़ुरआन परमेश्वर की ओर से सम्पूर्ण मानवजाति के लिए पूरे जीवन का संविधान है। शान्ति और सुरक्षा और सुख-चैन की ध्वजावाहक किसी व्यवस्था के लिए इस आदेश का कितना महत्व है इसे वे लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं जिनके कंधों पर समाज और देश की सुरक्षा और शान्ति का दायित्व होता है।

क़ुरआन मजीद ने तो स्वयं इस तरह की ग़लतफ़हमी और आपत्ति को दूर करते हुए एलान कर दिया है कि :

> "परमेश्वर तुम्हें केवल उन लोगों से दोस्ती करने से रोकता है जिन्होंने तुमसे धर्म के सम्बन्ध में युद्ध किया और तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकाले जाने में मदद की।" (60 : 9)

क़ुरआन की इस हिदायत की मौजूदगी में क्या यह आपत्ति सही हो सकती है कि वह ग़ैर-मुस्लिम रिश्तेदारों से सम्बन्ध और मेलजोल रखने को मना करता है?

सामान्य परिस्थितियों में ग़ैर-मुस्लिम माँ-बाप और अन्य ग़ैर-मुस्लिम रिश्तेदारों के बारे में क़ुरआन का आदेश क्या है? यह बात क़ुरआन में सुनहरे शब्दों में मौजूद है। परमेश्वर कहता है :

"और हमने इनसान को उसके माँ-बाप के बारे में निर्देश दिया है—उसकी माँ ने कष्ट पर कष्ट उठाकर उसे पेट में रखा और दो साल उसे दूध छूटने में लगे—कि मेरे कृतज्ञ हो और अपने माँ-बाप के भी। (और यह बात याद रखो कि तुम्हें मरने के बाद) मेरी तरफ़ ही लौटकर आना है। (अगर तुमने इस आदेश पर अमल किया तो तुम्हें इसका अच्छा बदला दिया जाएगा और अगर इसपर अमल न किया तो सज़ा मिलेगी।) लेकिन अगर वे (माँ-बाप) तुझपर दबाव डालें कि तू किसी को मेरे साथ साझी ठहराए, जिसका तुझे ज्ञान नहीं तो (इस मामले में) उनकी बात मत मानना, लेकिन दुनिया में उनके साथ सद्व्यवहार करते रहना और अनुसरण उस व्यक्ति के रास्ते का करना जो मेरी ओर उन्मुख हो। (इस बात को हमेशा याद रखना कि) तुम सबको मेरी ओर ही पलटना है, फिर मैं तुम्हें बता दूँगा जो कुछ तुम करते रहे होगे।"

(31 : 14-15)

क़ुरआन की इस शिक्षा पर विचार करें और निर्णय करें कि क्या माँ-बाप के सम्बन्ध में इससे ज़्यादा उचित बात कोई दूसरी हो सकती है? क़ुरआन की इन आयतों में प्रत्येक मनुष्य को अपने माँ-बाप के साथ सद्व्यवहार और कृतज्ञता का रवैया अपनाने की शिक्षा दी गई है। चाहे उसके माँ-बाप मुस्लिम हों या ग़ैर-मुस्लिम और सद्व्यवहार और कृतज्ञता के इस रवैये को अपनाने का जो कारण बताया गया है, वह कारण मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम दोनों माँ-बाप के साथ समान है। हर माँ अपनी औलाद को कष्ट और परेशानियाँ उठाकर पेट में रखती है, जन्म देती और पालती-पोसती है। इसलिए वह अपनी औलाद की ओर से कृतज्ञता और सद्व्यवहार की वैध अधिकारी है, चाहे माँ मुस्लिम हो या ग़ैर-मुस्लिम और इसी लिए क़ुरआन ने औलाद को उनके साथ सद्व्यवहार करने का आदेश दिया है।

हाँ! क़ुरआन ने यह बात भी स्पष्ट कर दी है कि अगर तुम्हारे यही उपकारी माँ-बाप तुम्हें ग़लत बातों की शिक्षा दें या ग़लत कामों पर उभारें तो इस मामले में उनकी बात नहीं माननी है। चाहे परमेश्वर के साथ किसी को साझी ठहराने की शिक्षा हो या अन्य ग़लत काम। अलबत्ता उनके साथ तुम्हारा व्यवहार प्रत्येक दशा में आदर और शिष्टाचार का होना चाहिए और तुम्हें सदैव उनके

साथ सद्व्यवहार करते रहना चाहिए।

इतनी उचित और बुद्धिसगंत बात से इनकार कौन कर सकता है? दुनिया के हर समाज और हर देश में इस शिक्षा को मान्यता प्राप्त है, इसलिए कि दुनिया के किसी क़ानून में भी माँ-बाप की ग़लत बातों को मानने को वैधता प्रदान नहीं की गई है।

क़ुरआन की इस बात पर आपत्ति करनेवाले हमारे ये हिन्दू भाई अगर प्रह्लाद जी की कथा पर विचार करते तो यह तथ्य उनपर और स्पष्ट हो जाता। प्रह्लाद जी का पिता हिरण्कश्यप अपने को ईश्वर कहलवाता था और उसकी प्रजा में सभी लोग उसे ईश्वर समझते थे। लेकिन प्रह्लाद जी ने अपने पिता की यह बात मानने से साफ़ इनकार कर दिया। उनके पिता ने इस अवज्ञा और दुस्साहस पर प्रह्लाद जी को तरह-तरह की यातनाएँ दीं। उस ईशभक्त ने यातानाएँ झेलीं, लेकिन अपने पिता को ईश्वर मानने से इनकार कर दिया। ईश्वर होने का झूठा दावा करनेवाले उस पिता ने अपने पुत्र प्रह्लाद को अन्ततः आग में झोंकने का आदेश दे दिया। प्रह्लाद ने इस आदेश की तनिक भी परवाह नहीं की और अपने पिता की इस ग़लत बात को स्वीकार नहीं किया कि वह उसे ईश्वर समझे।

इसी घटना की याद में हिन्दू भाई हर साल होली का त्यौहार मनाते हैं, अगर क़ुरआन ने यही शिक्षा मुसलमानों को दी है तो हिन्दू धर्म का दावा करने वाले ये लोग क़ुरआन पर आपत्ति करते हैं, कितने आश्चर्य की बात है!

क़ुरआन और धार्मिक स्वतंत्रता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि क़ुरआन चाहता है कि एक ईश्वर के सिवा किसी अन्य को पूज्य-प्रभु स्वीकार न किया जाए। उसे ही स्रष्टा, पालनहार, स्वामी, परमप्रीतम, सर्वशक्तिमान, अन्तर्यामी, आजीविकादाता, आवश्यकताएँ पूरी करनेवाला, चिंतानाशक, सुखदाता, मृत्यु और जीवन का स्वामी और वास्तविक शासक, निर्बाध आज्ञा मानने योग्य और प्रलय के दिन इनसानों का हिसाब-किताब लेनेवाला स्वीकार किया जाए। उसे निराकार माना जाए और उसका बुत न बनाया जाए। लेकिन क़ुरआन अपनी इस सही और उचित बात को भी बलपूर्वक और ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं मनवाता बल्कि इसके लिए वह

प्रमाण देता, सदुपदेश देता और सोच-विचार करने का आमंत्रण देता है।

क़ुरआन की यह शिक्षा और आदेश कदापि नहीं है कि जो इन बातों को स्वीकार न करे उससे युद्ध किया जाए और उसे मौत के घाट उतार दिया जाए। यह एक बिलकुल ही झूठा आरोप है जो क़ुरआन और इस्लाम पर लगाया जाता है।

क़ुरआन में तो जगह-जगह यह बात कही गई है कि इस दुनिया में इनसान को सोच-विचार एवं कार्य की स्वतंत्रता देकर परीक्षा के लिए भेजा गया है और बलपूर्वक किसी विशेष धारणा को अपनाने पर विवश नहीं किया गया है। इस दुनिया (कर्म-क्षेत्र) में वह जो भी नीति अपनाएगा मृत्यु के बाद आनेवाले पारलौलिक जीवन में उसके अनुसार वह इनाम या सज़ा पाएगा। शक्ति या तलवार के द्वारा किसी को अपनी धारणा अपनाने पर विवश करने की शिक्षा और आदेश अगर क़ुरआन देता तो फिर इस दशा में परीक्षा का वह उद्देश्य ही समाप्त हो जाता जिसका उल्लेख क़ुरआन में बार-बार किया गया है।

क़ुरआन में परमेश्वर कहता है :

"फिर (ऐ पैग़म्बर) हमने तुम्हारी ओर यह ग्रन्थ अवतरित किया जो सत्य लेकर आया है और 'मूल ग्रन्थ' में से जो कुछ उसके आगे मौजूद है उसकी पुष्टि करनेवाला और उसका रक्षक और निगहबान है। अतः तुम ईश्वर के भेजे हुए क़ानून के अनुसार लोगों के मामलों का फ़ैसला करो और जो सत्य तुम्हारे पास आया है उससे विमुख होकर उनकी इच्छाओं का अनुसरण न करो। हमने तुम इनसानों में से हर एक के लिए एक पन्थ और एक कार्य-पद्धति निश्चित की। अगर परमेश्वर चाहता तो तुम सबको एक समुदाय भी बना सकता था, (लेकिन उसने ऐसा नहीं किया) ताकि उसने जो कुछ तुम लोगों को दिया है उसमें तुम्हारी परीक्षा ले। अतः भलाइयों में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करो। अन्ततः तुम सबको परमेश्वर की ओर पलटना है, फिर वह तुम्हें असल वास्तविकता बता देगा जिसमें तुम विभेद करते रहे हो।" (5 : 48)

क़ुरआन में एक जगह परमेश्वर ने अपने पैग़म्बर से कहा :

"(ऐ पैग़म्बर !) ऐसा लगता है कि अगर इन लोगों ने इस शिक्षा को

ग्रहण नहीं किया तो तुम इनके पीछे दुख के मारे अपने प्राण ही दे दोगे। सत्य यह है कि जो कुछ सुख-सामग्री भी ज़मीन पर है, उसको हमने ज़मीन का सौन्दर्य बनाया है ताकि लोगों की परीक्षा लें कि उनमें कौन उत्तम कर्म करनेवाला है।" (18 : 6-7)

क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर कहा गया :

"बड़ा ही महिमावान और उच्च है वह (परमात्मा) जिसके हाथ में (जगत् का) शासन है और वह हर बात की सामर्थ्य रखता है। उसी ने मृत्यु और जीवन को बनाया ताकि तुम लोगों की परीक्षा ले कि तुम में कौन उत्तम कर्म करनेवाला है।" (67 : 1- 2)

इसी विषय की बहुत-सी आयतें क़ुरआन में मौजूद हैं, जिनसे इस तथ्य का पता चलता है कि इनसान को इस दुनिया में चिन्तन और कर्म की स्वतंत्रता देकर उसकी परीक्षा ली जा रही है। इन शिक्षाओं के होते हुए यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि किसी को तलवार या शक्ति के ज़ोर से एक ही धारणा ग्रहण करने पर विवश करने का आदेश क़ुरआन देता है।

जिन लोगों से युद्ध करने की बात क़ुरआन मे कही गई है वह उनके ग़ैर-मुस्लिम होने के कारण नहीं, बल्कि इस कारण कही गई है कि वे इस्लाम और उसके अनुयायियों पर घोर अत्याचार करते थे, उन्हें ख़त्म करने के लिए साज़िशें करते थे, मुसलमानों पर ख़ुद बढ़-चढ़ कर हमले करते थे, और मुसलमानों को इस्लाम पर अमल करने से रोकते थे, जिसके कुछ विवरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

धर्म ग्रहण करने के सम्बन्ध में क़ुरआन इस मूल सिद्धान्त की घोषणा करता है :

"धर्म के सम्बन्ध में कोई ज़बरदस्ती नहीं।" (2 : 256)

क़ुरआन में एक अन्य जगह है :

"(ऐ पैग़म्बर) अपने प्रभु की ओर से (लोगों के सामने) सत्य पेश कर दो। अब जो चाहे उसे माने और जो चाहे इनकार करे।" (18 : 29)

क़ुरआन में एक अन्य जगह कहा गया :

"(ऐ पैगम्बर) तुम्हारे प्रभु की ओर से जो मार्गदर्शन तुम्हें दिया गया है

उसका अनुसरण करते रहो। उसके सिवा कोई पूज्य प्रभु नहीं है। मुश्रिकों (बहुदेववादियों) से न उलझो — (याद रखो कि) अगर परमेश्वर चाहता तो वे शिर्क न कर सकते थे — और हमने तुम्हें इन (बहुदेववादियों) पर कोई दारोग़ा नहीं बनाया है और न तुम उनपर कोई वकील बनाए गए हो।" (6 : 106-107)

क़ुरआन में एक अन्य जगह कहा गया है :

"तुम उनके उपास्यों को, जिन्हें वे परमेश्वर को छोड़कर पुकारते हैं, गालियाँ न दो (न उनके लिए अपशब्द कहो)।" (6 : 108)

क़ुरआन में ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से कहा गया :

"आप उपदेश दीजिए और समझाइए-बुझाइए क्योंकि आपके ज़िम्मे केवल उपदेश देना है। आप उनपर दारोग़ा या हवलदार नहीं हैं (कि ज़ोर-ज़बरदस्ती से अपनी बात मनवा लें)।" (88 : 21-22)

क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर है :

"हमने उसको (मनुष्य को) सत्यमार्ग दिखा दिया है। अब चाहे वह (उसपर चलकर) कृतज्ञ बने, चाहे (उसे छोड़कर) अकृतज्ञ।" (76 : 3)

क़ुरआन में है—

"(ऐ पैग़म्बर !) कह दो, ऐ कुफ़्र और इनकार करनेवालो ! मैं उन चीज़ों की उपासना नहीं कर सकता जिनकी उपासना तुम करते हो और न तुम्हीं उसकी उपासना के लिए तैयार हो जिसकी उपासना मैं करता हूँ और न मैं उपासना करूँगा उनकी जिनकी तुम उपासना करते हो, और न तुम उपासना करनेवाले हो उसकी जिसकी मैं उपासना करता हूँ। तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म और मेरे लिए मेरा धर्म।" (109 : 1-6)

क़ुरआन की यह सूरा उस समय की है जब ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) लोगों को एक ईश्वर की उपासना और बन्दगी की ओर बुला-बुलाकर थक गए थे और कुछ लोगों ने मानकर नहीं दिया और अब उनसे कोई उम्मीद भी बाक़ी नहीं रही कि वे एक ईश्वर की उपासना के लिए तैयार होंगे। इन परिस्थितियों में ईशदूत के मुख से एलान कराया गया और इनकार करनेवालों से कह दिया गया कि अगर तुम अपनी नीति पर अडिग रहना चाहते हो तो रहो।

उपर्युक्त क़ुरआनी शिक्षाएँ मनुष्य की धार्मिक स्वतंत्रता का खुला एलान हैं। जो धर्म और जो किताब यह एलान ख़ुद करती हो उसके बारे में यह दुष्प्रचार करना कि उसकी यह शिक्षा है कि "जो उस पर ईमान न लाए उसे क़त्ल कर दिया जाए", कितना बड़ा अत्याचार व अन्याय है !

क़ुरआन और इस्लाम के बारे में इस तरह का ग़लत और भ्रामक प्रचार करनेवाली संस्थाओं और उनके हमख़याल लोगों के मन में कभी यह विचार नहीं आता कि जब इस्लाम और क़ुरआन की सही शिक्षाएँ और सही तस्वीर लोगों के सामने आएगी तो लोगों की उनके बारे में क्या राय बनेगी। सारी दुनिया तो उनके समान विचार वाली है नहीं कि लोग आँखें बन्द करके उनकी बातों को सत्य मान लेंगे। यह युग ज्ञान-विज्ञान और शोध और खोज का युग है और दुनिया में बहरहाल ऐसे लोगों की बड़ी संख्या मौजूद है जो जानकारी और शोध के बाद ही किसी के बारे में कोई राय बनाते हैं। ऐसे बहुत-से लोगों से हमारी मुलाक़ातें हुई हैं और होती रहती हैं, जिन्होंने इस तरह के दुष्प्रचार से प्रेरित होकर इस्लाम और क़ुरआन का उसके सही स्रोतों से अध्ययन किया और इस्लाम की तर्कसंगत, संतुलित और सत्य पर आधारित कल्याणकारी शिक्षाओं से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

काफ़िर, कुफ़्र, शिर्क (अनेकेश्वरवाद) और क़ुरआन

क़ुरआन में काफ़िर, कुफ़्र और शिर्क के शब्द बहुत-सी जगहों पर प्रयुक्त हुए हैं। कुफ़्र के अर्थ अवसर के अनुरूप विभिन्न होते हैं। जैसे इनकार, अवज्ञा, कृतघ्नता, निरादर और नाक़द्री, सच्चाई को छिपाना और अधर्म आदि। कुफ़्र करनेवाले को अरबी भाषा में 'काफ़िर' कहते हैं।

'काफ़िर' शब्द व्याकरण की दृष्टि से गुणवाचक संज्ञा है, यह अपमानबोधक शब्द नहीं है। यह शब्द उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है जिनके सामने ईश्वरीय धर्म इस्लाम की शिक्षाएँ पेश की गईं और उन्होंने किसी भी कारण से उनको ग़लत समझा और उनका इनकार कर दिया। कुफ़्र का शब्द उन लोगों के

लिए भी प्रयुक्त हुआ है जो अपने को इस्लाम का अनुयायी और मुसलमान कहते थे, परन्तु इस्लाम के प्रति निष्ठावान न थे। उदाहरणार्थ ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का कथन है :

"जिस (मुसलमान) ने जान-बूझकर नमाज़ छोड़ दी उसने कुफ़्र किया।"

(हदीस)

क़ुरआन मजीद में कहा गया है :

"जो लोग परमेश्वर के भेजे हुए निर्देशों के अनुसार फ़ैसला न करें वे काफ़िर (अधर्मी) हैं।" (5 : 40)

उपर्युक्त शिक्षाओं में सम्बोधन साफ़ तौर पर उन लोगों से है जो इस्लाम के अनुयायी होने का दावा करते थे और अपने को मुसलमान कहते थे, परन्तु वे इस्लाम के प्रति निष्ठावान न थे।

क़ुरआन में एक जगह है :

"जिसने ताग़ूत (काल्पनिक देवों) का कुफ़्र (इनकार) किया और परमेश्वर को मान लिया उसने एक ऐसा मज़बूत सहारा थाम लिया जो कभी टूटनेवाला नहीं।" (2 : 256)

क़ुरआन की इस आयत में शब्द 'कुफ़्र' इनकार के अर्थ में है और मुसलमानों से ताग़ूत (काल्पनिक देवों) का इनकार कराना अपेक्षित है।

क़ुरआन में एक दूसरी जगह है :

"जान लो कि यह सांसारिक जीवन मात्र एक खेल और तमाशा है और एक साज-सज्जा और तुम्हारा आपस में एक-दूसरे पर गर्व करना और धन और सन्तान में एक-दूसरे से बढ़ा हुआ ज़ाहिर करना। इस की मिसाल ऐसी है कि बारिश हुई तो उससे पैदा होनेवाली खेती से कुफ़्फ़ार (किसान) ख़ुश हो गए। फिर वही खेती पक जाती है और तुम देखते हो कि वह पीली हो जाती है। फिर वह भुस बनकर रह जाती है।" (57 : 20)

क़ुरआन की इस आयत में शब्द कुफ़्फ़ार (काफ़िरों) किसान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

क़ुरआन में एक जगह परमेश्वर कहता है :

"तुम मुझे याद रखो मैं, तुम्हें याद रखूँगा और मेरा आभार प्रकट करते रहो और मेरे प्रति कुफ़्र (अकृतज्ञता) न दिखलाओ।" (2 : 152)

क़ुरआन की इस आयत में 'कुफ़्र' शब्द 'अकृतज्ञता' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

क़ुरआन में जहाँ कहीं भी ईश्वर और उसकी शिक्षाओं और उसके आदेशों का इनकार करनेवालों के लिए 'काफ़िर' शब्द प्रयुक्त हुआ है तो उसका उद्देश्य गाली, घृणा और निरादर नहीं है, बल्कि उनके इनकार करने के कारण वास्तविकता प्रकट करने के लिए ऐसा कहा गया है। 'काफ़िर' शब्द हिन्दू का पर्यायवाची भी नहीं है जैसा कि दुष्प्रचार किया जाता है। 'काफ़िर' शब्द का लगभग पर्यायवाची शब्द 'नास्तिक' है। यह बात हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि किसी व्यक्ति के इस इनकार के कारण न तो उसे इस दुनिया में कोई सज़ा दी जा सकती है और न किसी मानवीय अधिकार से उसे वंचित रखा जा सकता है। वह सांसारिक मामलों में समानाधिकार रखता है।

क़ुरआन में जिन काफ़िरों (इनकार करनेवालों) से युद्ध की बात कही गई है उसका कारण उनका मात्र काफ़िर (इनकार करनेवाला) होना नहीं है, बल्कि वह बात उनके घोर अपराधों और उन हालात के कारण कही गई है जो हालात उन्होंने पैदा किए थे। अगर इस्लाम और क़ुरआन पर ईमान रखनेवाला कोई मुसलमान भी ऐसे अपराध करेगा और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगा जिनमें युद्ध आवश्यक हो जाता है तो उस मुसलमान के विरुद्ध भी इस्लामी राज्य युद्ध करेगा। अतः हम देखते हैं कि इस्लामी राज्य के पहले ख़लीफ़ा (शासक) हज़रत अबू बक्र ने स्वयं ऐसे मुसलमानों के ख़िलाफ़ युद्ध का आदेश दिया था।

हर धर्म में उस धर्म की मौलिक धारणाओं एवं शिक्षाओं को माननेवालों और न माननेवालों के लिए अलग-अलग विशेष शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे, हिन्दू धर्म में उन लोगों के लिए नास्तिक, अनार्य, असभ्य, दस्यु, और मलिच्छ शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो हिन्दू धर्म के अनुयायी न हों।

अगर कोई व्यक्ति किसी धर्म की धारणा या शिक्षा को स्वीकार नहीं करता तो उसे उसका इनकार करनेवाला अर्थात् 'काफ़िर' (नास्तिक) ही कहा जाएगा।

इस पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। बुद्ध जी वेदों को नहीं मानते थे, इसलिए उन्हें नास्तिक कहा गया है।

शिर्क का अर्थ है शरीक करना या साझी ठहराना। क़ुरआन की परिभाषा में ईश्वर के अस्तित्व या उसके गुणों और अधिकारों में किसी को शरीक या साझी समझना 'शिर्क' है। शिर्क करनेवाले को अरबी भाषा में 'मुशरिक' कहते हैं।

जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है कि क़ुरआन में अनेकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा का खंडन और उसकी निंदा की गई है और कुफ़्र और शिर्क करनेवालों (अनेकेश्वरवादियों) और मूर्तिपूजकों को परलोक की यातना से डराया गया है तो बहरहाल ईश्वर को इसका अधिकार प्राप्त है। जिस परमेश्वर ने हमें पैदा किया, हमारी आवश्यकताएँ पूरी कीं और कर रहा है। जिसने हमारे लिए हर प्रकार की सामग्री जुटाई और जुटा रहा है, वह वास्तविक स्रष्टा, स्वामी, जीविकादाता, पालनहार, दयावान और कृपाशील प्रभु अपने पैदा किए हुए जन समूह से इसकी अपेक्षा करता है कि उसके साथ किसी को साझी न ठहराया जाए और उसकी अवज्ञा न की जाए। दुनिया में किसी मालिक को अपने नौकर की ग़लती, अवज्ञा और विद्रोह पर उसे डाँटने या सज़ा देने का अधिकार होता है। इस दुनिया का कोई शासक अपनी सत्ता और अधिकारों में किसी दूसरे के हस्तक्षेप को सहन नहीं कर सकता। कोई देश ऐसे व्यक्ति को कोई मंत्रीपद सौंप नहीं सकता जो सिरे से उस देश के संविधान और सम्प्रभुता ही को स्वीकार न करता हो। ऐसे व्यक्ति को कोई मंत्रीपद प्रदान करना तो अलग रहा, उसे सहन ही नहीं कर सकता। इज़्ज़तदार और प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी कोई पति इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उसकी धर्मपत्नी उसके अलावा जिसको चाहे पति बनाती फिरे। इस दुनिया में तो दयावान प्रभु का अनुग्रह नास्तिक और अवज्ञाकारी लोगों को भी प्राप्त है, क्योंकि यहाँ उनकी परीक्षा लेना अभीष्ट है, लेकिन मरने के बाद आनेवाले पारलौकिक जीवन में प्रभु प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब लेगा और इस दुनिया में उसने जो भी कर्म किए हैं उनके अनुसार बदला देगा। वह अपने आस्तिक तथा आज्ञाकारी को सफलता प्रदान करेगा और अपने नास्तिक तथा अवज्ञाकारी, अत्याचारी और दुष्कर्मी को सज़ा देगा। परमेश्वर इन विभिन्न और विपरीत गुणों वाले

व्यक्तियों के परिणाम में अन्तर रखेगा। अपने माननेवाले आस्तिकों, आज्ञाकारियों और सदाचारियों को इनाम (स्वर्ग) प्रदान करना और इनकार करनेवाले अवज्ञाकारियों, विद्रोहियों, अत्याचारियों और नास्तिकों को सज़ा (नरक) देना तो सर्वथा सत्य और न्यायसंगत है।

क़ुरआन मजीद की उस आयत पर भी आक्षेप किया गया है जिसमें अनेकेश्वरवादियों को नजिस (अपवित्र) कहा गया है।

आपत्तिकर्ताओं ने यहाँ भी शब्द के बाह्य अर्थ के आधार पर आक्षेप किया है और उसकी पृष्ठभूमि और आशय मालूम करने की कोशिश नहीं की, जबकि न्यायसंगत बात यह थी कि कहनेवाले के उद्देश्य और अभिप्राय के अनुसार ही अर्थ लेना चाहिए था जैसा कि हमने किताब के आरम्भ में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का कथन उद्धृत करके यह बात कही है।

क़ुरआन का उद्देश्य और अभिप्राय इससे यह है कि शिर्क (अनेकेश्वरवाद) एक घृणित कर्म है और यह कर्म करनेवाले घृणित कर्म से अपने चरित्र को दूषित कर रहे हैं। उनके विचार और उनकी धारणाएँ विशुद्ध नहीं हैं। यह उसी तरह की बात है जिस तरह ग़लत काम करनेवाले को कहा जाता है कि यह बड़ा गंदा आदमी है। क़ुरआन में अनेकेश्वरवादियों को अपवित्र कहने का आशय यह कदापि नहीं है कि वे शारीरिक रूप से अपवित्र हैं। अगर क़ुरआन का आशय उन्हें शारीरिक रूप में अपवित्र या अछूत ठहराना होता तो वह मुसलमानों को यह आदेश क्यों देता कि

"किताबवालों का भोजन तुम्हारे लिए वैध है और तुम्हारा भोजन उनके लिए वैध है।" (5 : 5)

इस्लामी धर्मशास्त्रियों और क़ुरआन के टीकाकारों ने भी यहाँ नजिस (अपवित्र) शब्द का अर्थ वह नहीं लिया है जो आक्षेपकर्त्ताओं ने समझा है।

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके अनुयायियों (मुसलमानों) ने कभी भी उन्हें अछूत समझकर उनके साथ कोई व्यवहार नहीं किया। ईशदूत के चचा अबू तालिब ग़ैर-मुस्लिम और अनेकेश्वरवादी थे, फिर भी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) न केवल उनके साथ खाते-पीते और रहते-सहते थे, बल्कि उनको अपने इन अनेकेश्वरवादी चचा का संरक्षण भी प्राप्त था। ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) जब मक्का से मदीना वतन छोड़कर गए तो उनका दास, जो

रास्ता बतलाने के लिए साथ था, वह भी, मुसलमान नहीं, ग़ैर मुस्लिम था। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके साथियों के कितने ही रिश्तेदार ग़ैर मुस्लिम तथा अनेकेश्वरवादी थे, परन्तु वे उनके साथ खाते-पीते और रहते-सहते थे। मुसलमानों ने किसी ज़माने में भी ग़ैर-मुस्लिमों और अनेकेश्वरवादियों के हाथ की बनी चीज़ें खाने-पीने या प्रयोग करने से परहेज़ नहीं किया। आज भी न केवल हिन्दुस्तान में मुसलमान अपने ग़ैर-मुस्लिम भाइयों के साथ खाते-पीते हैं, बल्कि मुस्लिम देशों में भी ग़ैर-मुस्लिमों के हाथों से बनी चीज़ें निस्संकोच प्रयोग की जाती हैं। अगर क़ुरआन की आयत का अर्थ और अभिप्राय वही होता जो आपत्तिकर्ताओं ने समझा है तो कहीं पर तो और कभी तो उसपर अमल हुआ होता, फिर आपत्तिकर्ता इस आयत का मनमाना अर्थ लेने पर आग्रह क्यों करते हैं?

इस्लाम में इनसानों से छूतछात की कल्पना सिरे से मौजूद ही नहीं है। यहाँ किसी भी इनसान को शारीरिक रूप से अपवित्र नहीं समझा जाता। कोई भी मुसलमान किसी भी इनसान के हाथ की तैयार की हुई चीज़ इस्तेमाल कर सकता है। उसके साथ एक ही बर्तन में खा-पी सकता है, बल्कि उसका झूठा भी इस्लाम की दृष्टि में अपवित्र नहीं है। क़ुरआन की दृष्टि में तो सारे ही इनसान एक ही माँ-बाप की सन्तान और आपस में भाई-भाई हैं।*

एकेश्वरवाद, अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा और वेद

हिन्दू धर्म के ग्रन्थों में एकेश्वरवाद और अनेकेश्वरवाद तथा मूर्तिपूजा से सम्बन्धित मूल्यवान शिक्षाएँ और उनके अच्छे या बुरे परिणामों का विस्तार से उल्लेख मिलता है। हम सिर्फ़ वेदों से कुछ श्लोक यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :

---

* हिन्दू समाज में इनसानों और इनसानों के बीच बल्कि अपने सहधर्मियों के बीच ऊँच-नीच, छूतछात, अस्पृश्ता का जो व्यवहार है और उसकी जड़ें सामाजिक तथा धार्मिक रूप से कितनी गहरी हैं इसपर हम इस समय कोई टिप्पणी नहीं करना चाहते। आपत्तिकर्ता हमारे ये हिन्दू भाई हम से बेहतर इस तथ्य को जानते हैं।

स पर्यागाच्छुक्रमकायम् **(यजुर्वेद 40 : 8)**

"वह (ब्रह्म) शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित और सब ओर से व्याप्त है।" [23]

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥

(ऋ० 1/164/39)

"परम आकाश के समान व्यापक और ऋचाओं के अक्षर के समान अविनाशी परमात्मा है, जिसमें सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं। जो उस परम ब्रह्म को नहीं जानता, वह इन वेद-मंत्रों से क्या करेगा। जो उस परमतत्व को जानते हैं, वे ये विद्वान उत्तम स्थान में बैठते हैं।" [24]

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

(यजुर्वेद 40 : 1)

"हे मनुष्य! जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है। उससे डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनंद को भोग।" [25]

इस श्लोक में साफ़ तौर पर इनसानों को एक ईश्वर को मानने और उससे डर कर जीवन व्यतीत करने और अन्याय से बचने का आदेश दिया गया है और बताया गया है कि इसी नीति पर चलकर सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुवन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥

(यजुर्वेद 40 : 1)

"मैं परमैश्वर्य्यवान सूर्य के सदृश जगत् का प्रकाशक हूँ। कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ। मैं ही जगत् रूप धन का निर्माता हूँ। सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले मुझ ही को जानो। हे जीवो! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग

मत होओ।" [26]

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्।

अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे।

(ऋग्वेद 10/49/1)

"हे मनुष्यो! मैं सत्य भाषणरूप स्तूति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझको वह वेद यथावत् कहता उससे सबके ज्ञान को मैं बढ़ाता, मैं सत्यपुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं। इसलिए तुम लोग मुझको छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो।" [27]

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः॥ (यजुर्वेद 40 : 9)

"जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं।" [28]

यहाँ भी हम देखते हैं कि एक परमेश्वर को छोड़कर किसी अन्य की उपासना करनेवाले को वेद में नरक की यातना की सूचना दी गई है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति। **(यजु० 32/3)**

"उस परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है।" [29]

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुꣳषि पश्यति।

तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (केनोपनिषद् 1 : 6)

"जिसे चक्षु (आँख) के द्वारा नहीं देखा जा सकता, अपितु चक्षु (आँख) जिसकी महिमा से देखने में सक्षम होता है, उसे ही तुम ब्रह्म जानो।

चक्षु (आँख) के द्वारा द्रष्टव्य (दिखनेवाले) जिस तत्व की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।"[30]

हम देखते हैं कि उपर्युक्त श्लोकों में एक ईश्वर ही को मानने की शिक्षा दी गई है और अनेकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा से स्पष्ट रूप से रोका गया है और इसपर यातना से भी डराया गया है। इस प्रकार की शिक्षाएँ वेदों में बहुतायत से मौजूद हैं।

हिन्दू समाज के एक बड़े सुधारक और विद्वान स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी अनेकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा की भीषण हानियों और अति भयानक परिणाम से लोगों को सावधान किया है। और इन कर्मों को समाज और स्वयं इनसानों के लिए घातक बताया है।

वेदों और अन्य हिन्दू ग्रन्थों में इन शिक्षाओं के होते हुए हिन्दू धार्मिक संस्थाओं और उनके सहयोगी अन्य लोगों ने क़ुरआन पर जो आक्षेप किए हैं उन्हें देखकर इन लोगों के दुस्साहस पर आश्चर्य भी होता है और दुख भी! इन आक्षेपकर्त्ताओं ने कितनी अन्याययुक्त रीति से काम लेकर क़ुरआन और इस्लाम से लोगों को दूर करने का घृणित प्रयास किया है।

पारलौकिक कल्याण और मुक्ति के वास्तविक पात्र क़ुरआन की दृष्टि में

कुछ लोग यह समझते हैं कि क़ुरआन में कल्याण व मुक्ति और स्वर्ग का पात्र उन लोगों को ठहराया गया है जिनका जन्म मुसलमान परिवार में हुआ है। यह भी एक बड़ा भ्रम और ग़लतफ़हमी है। क़ुरआन मजीद में पारलौकिक सफलता और मुक्ति के लिए ईश्वरीय आदेशों के पालन को अनिवार्य ठहराया गया है और उनका पालन न करनेवालों को पारलौकिक जीवन में मिलनेवाली दर्दनाक यातना से डराया गया है। यह नियम सारे इनसानों पर लागू होता है। चाहे वे किसी भी ख़ानदान में पैदा हुए हों, चाहे किसी पैग़म्बर और ईशदूत के घर में ही उनका जन्म क्यों न हुआ हो, और वे ज़बान से कुछ भी दावा क्यों न करते हों।

क़ुरआन में स्पष्ट रूप से कहा गया है :

"निस्सन्देह मुसलमान, यहूदी, साबई और ईसाई जो भी परमेश्वर को और प्रलयदिवस को मानेगा और अच्छे और भले कर्म करेगा, ऐसे लोगों को (पारलौकिक जीवन में) न तो कोई भय होगा और न वे दुखी होंगे।" (5 : 69)

क़ुरआन की इस आयत में साफ़ तौर से बताया गया है कि पारलौकिक जीवन में आस्था और विश्वास तथा सत्कर्म ही वास्तव में सफलता और सुख-शान्ति के कारण सिद्ध होंगे न कि किसी विशेष जाति और वंश में जन्म लेना।

क़ुरआन में एक अन्य जगह ऐसे लोगों के बारे में जो केवल ज़बान से आस्तिक होने का दावा करते हैं परन्तु वास्तव में वे आस्तिक और धार्मिक नहीं हैं, कहा गया है :

"कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते है कि हम परमेश्वर में विश्वास और आस्था रखते है और प्रलयदिवस में भी, हालाँकि वास्तव में वे आस्था नही रखते।" (2 : 8)

एक दूसरी जगह क़ुरआन में है :

"क्या लोगों ने यह समझ रखा है कि वे केवल इतना कह देने से छोड़ दिए जाएँगे कि हम ईमान लाए हैं (अर्थात् हम मुसलमान हैं) और उनकी परीक्षा नहीं ली जाएगी।" (29 : 2)

क़ुरआन में सफल और असफल लोगों के आचरण के बारे में बताया गया :

"जो लोग परमेश्वर को दिए हुए वचन को निभाते हैं और वादों और वचनों को भंग नहीं करते और जो ऐसे हैं कि परमेश्वर ने जिसे जोड़ने का आदेश दिया है उसे जोड़ते हैं और अपने प्रभु से डरते हैं और (प्रलय के दिन के) बुरे हिसाब का भय उन्हें लगा रहता है, और जिन लोगों ने अपने प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए धैर्य से काम लिया तथा नमाज़ (उपासना) का आयोजन किया और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से खुले और छिपे (स्थिति के अनुसार) ख़र्च (दान) किया और जो लोग सदाचरण से बुराई को दूर करते हैं, वही हैं जिनके लिए पारलौकिक घर की सफलता है। अर्थात् सदा रहनेवाले बाग़ हैं जिनमें वे दाख़िल होंगे और उनके बाप-दादा और उनकी पत्नियाँ और उनकी सन्तान में जो सुकर्मी होंगे वे भी उनके साथ स्वर्ग में होंगे। फ़रिश्ते प्रत्येक द्वार से उनके पास पहुँचेंगे। तुमपर सुख-शान्ति (सलाम) हो। उसके बदले में जो तुमने धैर्य और सहनशीलता से काम किया। तो क्या ही अच्छा है परिणाम पारलौकिक घर का! रहे वे लोग जो परमेश्वर को दिए वचन को उसे दृढ़ करने के बाद तोड़ डालते हैं और परमेश्वर ने जिसे जोड़ने का आदेश दिया है उसे काटते हैं और धरती में उपद्रव एवं बिगाड़ पैदा करते हैं, वही हैं जिनके लिए फिटकार है और जिनके लिए पारलौकिक घर का बुरा परिणाम है।" (13 : 20-25)

एक दूसरी जगह क़ुरआन में है :

"जिस किसी ने भी सत्कर्म किया, पुरुष हो या स्त्री, मगर हो वह आस्तिक (ईमानवाला) तो अवश्य हम उसे पवित्र जीवन व्यतीत कराएँगे। ऐसे लोग जो सत्कर्म करते रहे हैं उसके बदले में अवश्य ही हम उन्हें उनका (अच्छा) बदला प्रदान करेंगे।" (16 : 19)

क़ुरआन में एक और स्थान पर है :

"गवाह है ज़माना कि वास्तव में मनुष्य घाटे में है, सिवाय उन लोगों के जो आस्थावान हैं और सत्कर्म करते हैं। एक दूसरे को सत्य का उपदेश करते हैं और एक-दूसरे को धैर्य का उपदेश करते हैं।"

(103 : 1-3)

क़ुरआन मजीद की ये आयतें बताती हैं कि क़ुरआन की दृष्टि में पारलौकिक सफलता किसी विशेष ख़ानदान में पैदा होने या ज़बान से किसी चीज़ का केवल दावा कर देने पर निर्भर नहीं करती, है बल्कि उसके लिए उन सद्गुणों को पैदा करना और उन आदेशों का पालन करना आवश्यक है जिनका उल्लेख क़ुरआन मजीद में किया गया है और ये आदेश इनसान के पूरे जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। उन्हें विस्तार से बयान करने का यहाँ अवसर नहीं है।

निवेदन

अन्त में आपत्तिकर्ताओं से भी और आम लोगों से भी हमारा हार्दिक निवेदन है कि वे सत्य की खोज अवश्य करें। इस दुनिया में मनुष्य को क्यों भेजा गया है और यहाँ से उसे कहाँ जाना है, इसका पता लगाना और इस दुनिया में सच्ची हार्दिक शान्ति और मरने के बाद सफलता व मुक्ति की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक आवश्यकता है और ये चीज़ें अपने वास्तविक स्रष्टा, स्वामी और पालनहार परमेश्वर के बतलाए और दिखाए हुए मार्ग पर चलकर ही प्राप्त हो सकती हैं। परमेश्वर के बताए हुए सत्यमार्ग की खोज करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि एवं विवेक और सोच-विचार की शक्तियाँ और योग्यताएँ इसी लिए प्रदान की हैं कि वह उनको प्रयोग में लाकर सत्य की खोज करे और जब सत्य उपलब्ध हो जाए तो फिर किसी की आलोचना की परवाह किए बिना उसको मज़बूती से थाम ले। इस सम्बन्ध में यह बात भी सदा सामने रहनी चाहिए कि सत्य किसी विशेष जाति या देश की निजी सम्पत्ति नहीं हुआ करता, बल्कि उसपर सारे मनुष्यों का उसी प्रकार अधिकार होता है जिस प्रकार सूरज और चाँद, हवा और पानी इत्यादि

पर। ज्ञान-विज्ञान की किसी खोज पर जिस प्रकार सम्पूर्ण मानवजाति अपना अधिकार समझती है, उसी प्रकार आत्मा का विज्ञान अर्थात् सत्यधर्म पर भी समान रूप से सम्पूर्ण मानवजाति का अधिकार है।

इस दुनिया में हमारी जितनी भौतिक आवश्यकताएँ हैं वे सब हमारे वास्तविक स्रष्टा और पालनहार परमेश्वर ने पूरी की हैं। यहाँ हमारे लिए सूरज-चाँद भी हैं और हवा-पानी भी। धरती से तरह-तरह के फल-फूल और अनाज-ग़ल्ले उस दयावान प्रभु ने प्रचुर मात्रा में उगाए हैं और इसी धरती के अन्दर खनिज पदार्थों, सोना-चाँदी और पेट्रोल आदि के भण्डार भी उस कृपाशील ने हमारे लिए रखे हैं। उस परमपिता परमेश्वर ने एक समाज भी हमें प्रदान किया है जिसमे माता-पिता हैं, बाप-बेटे हैं, भाई-बहन हैं, पति-पत्नी हैं और अन्य बहुत-से नाते-रिश्ते पाए जाते हैं, जिनके बिना जीवन की लम्बी यात्रा दुष्कर बन जाती। उस महादयालु ने शान्ति और सुकून के लिए रात और नींद जैसी चीजों का आयोजन किया, वहीं जीविका जुटाने और अन्य आवश्यक कार्यों को करने के लिए रात के बाद दिन बनाया है। उस कृपालु ने आकाश से हमारे लिए बारिश बरसाई और धरती के अन्दर मीठे जल का भण्डार हमारे लिए पैदा कर दिया। उस परमप्रीतम के उपहारों और अनुकम्पाओं को कहाँ तक गिनाएँ प्रत्येक व्यक्ति उनका अनुभव और अवलोकन स्वयं कर रहा है।

भाइयो ! तनिक शान्त मन से सोचिए कि जिस प्रभु ने हमारे भौतिक जीवन के लिए इतने साधन जुटाए हैं क्या वह हमारे आध्यात्मिक जीवन के लिए कुछ न करेगा और हमें यों ही भटकता छोड़ देगा ? क्या उस वास्तविक शासक ने मानवजाति को कोई ऐसा मार्ग नहीं दिखाया है, जिसपर चलकर मानव सही अर्थों में मानव बन सके, क्या उस प्रभु ने हमें स्वच्छन्द छोड़ दिया है कि हम जैसे चाहें जीवन यापन करें, जिसको चाहें पूजें और जिसकी चाहें बन्दगी करें। ऐसा सोचना भारी भूल होगी और परमेश्वर के प्रति नरादर भी।

वस्तुस्थिति यह है कि आज मनुष्य का सम्बन्ध अपने स्रष्टा परमेश्वर से टूट चुका है। मौखिक रूप से वह उसका नाम लेता अवश्य है और उसको मानने का दावा भी करता है, किन्तु मनुष्य का व्यावहारिक सम्बन्ध उस सत्ता से नही पाया जाता। और ऐसा शायद इसलिए है कि इस सम्बन्ध को जोड़ने से मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता ख़तरे में पड़ती नज़र आती है। यही मूल

कारण है कि मानव दानव बन चुका है, धोखा-धड़ी, लूट-खसोट, मार-धाड़ और अश्लीलता उसका धर्म बन चुकी है और अब तो मिट्टी का यह पुतला सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करने का दुस्साहस भी करने लगा है कि ईश ग्रन्थ और ईशवाणी से तुच्छ स्वार्थों और हितों के लिए बहुत से ईश आदेशों को निकाल दिया जाए। (ईश्वर हमें अपने प्रकोप से बचाए !)

हमें पूरी गम्भीरता के साथ प्रभु के सत्य मार्ग को खोजना होगा, अगर हम परमात्मा में कुछ भी आस्था रखते हैं और उससे हमें कुछ भी प्रेम है और इस जीवन के रहस्य को जानने की थोड़ी-सी भी जिज्ञासा और चिन्ता हमारे भीतर मौजूद है !

भाइयो ! इस्लाम धर्म का यह दावा है कि वह सारे मनुष्यों के स्वामी परमेश्वर का भेजा हुआ धर्म है और क़ुरआन ईश्वरीय ग्रन्थ है। उसका यह भी कहना है कि यह कोई नया धर्म नहीं है, बल्कि यह वही धर्म है, परमेश्वर हर देश और हर जाति में अपने पैग़म्बरों, दूतों, सन्देष्टाओं और ऋषियों-मुनियों के द्वारा जिसका ज्ञान कराता रहा है। मनुष्यों ने अपने स्वार्थों और तुच्छ इच्छाओं के लिए जब उस ईशधर्म में परिवर्तन और कमी-बेशी कर डाली तो उसे फिर से मनुष्यों के मार्गदर्शन के लिए भेजा। यही वह वास्तविक धर्म है जिसे इस्लाम के नाम से सुशोभित किया गया है।

इस्लाम वास्तव में कैसा धर्म है और क़ुरआन कैसी किताब है और उस दावे में कितना दम है जो यह धर्म करता है ? इसका सही पता तो उसी समय चल सकता है जब सही स्रोतों से उसका निष्पक्ष और न्यायसंगत अध्ययन किया जाए और इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य के लिए कुछ समय निकाला जाए। क़ुरआन मजीद के अनुवाद और उसकी टीकाएँ, ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी तथा इस्लाम के सम्बन्ध में अन्य किताबों का भण्डार विभिन्न भाषाओं में पुस्तकालयों और मार्किट में उपलब्ध है जिससे लाभ उठाया जा सकता है।

हम आपसे इस्लाम को ग्रहण करने और क़ुरआन को ईश्वरीय ग्रन्थ स्वीकार कर लेने की माँग नहीं कर रहे हैं, बल्कि हमारा सविनय निवेदन यह है कि आप इस धर्म का उसके सही स्रोतों से अध्ययन तो करें और देखें कि यह ईश्वरीय धर्म और ईश्वरीय मार्ग है या नहीं ? इसमें मनुष्यों की समस्याओं का समाधान

है या नही? और यह मनुष्यों को लोक या परलोक में सुख-शान्ति, सच्चा आनन्द और मुक्ति दिला सकता है या नहीं? कई बार ऐसा होता है कि जानकारी न होने के कारण मनुष्य ऐसी बात से घृणा करने लगता है जो वास्तव में उसकी सफलता और कल्याण की होती है। हमारा विचार है कि ऐसा ही कुछ इस्लाम और उसकी शिक्षाओं के साथ भी हुआ है और हो रहा है।

मनुष्य का अपनी वास्तविकता को समझना, इस दुनिया में सच्ची शान्ति और आनन्द प्राप्त करना, मरने के बाद क्या होगा, इस को जानना और मरने के बाद पेश आनेवाली परिस्थितियों में सफलता प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह आवश्यकता खाने-पीने और रहने-सहने की लौकिक आवश्यकताओं से कहीं अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण है। अगर इस के महत्व और इसकी गम्भीरता का कुछ भी आभास हमें है तो फिर जीवन के मौलिक प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए इतनी लम्बी उम्र में से कुछ घंटे, कुछ दिन या कुछ महीने निकालना कुछ भी मुश्किल नहीं हो सकता।

हमें आशा है कि निष्पक्ष होकर अगर इस्लाम का उसके मौलिक और वास्तविक स्रोतों से अध्ययन करेंगे तो इस्लाम और कुरआन का सही रूप आपके सामने आ जाएगा।

हम पालनहार परमेश्वर से प्रार्थना भी करते रहें कि हे दयावान, कृपाशील प्रभु सन्मार्ग की खोज में तू हमारी सहायता कर और पथभ्रष्टताओं से हमें बचा! तू अन्तर्यामी है! तू ही हमारा स्वामी है!!

संदर्भ

1. सत्यार्थ प्रकाश पृ० 5, संस्करण: 37 वाँ, अप्रैल 1989, प्रकाशक: आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली-6.

2. अनुवाद एवं भावार्थ— क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद हिन्दी भाष्य, संस्करण: मई 2001, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली।

3. उपर्युक्त

4. उपर्युक्त

5. उपर्युक्त

6. उपर्युक्त

7. उपर्युक्त

8. उपर्युक्त

9. उपर्युक्त

10. उपर्युक्त

11. उपर्युक्त

12. उपर्युक्त

13. उपर्युक्त

14. उपर्युक्त

15. उपर्युक्त

16. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य-4. पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। प्रकाशक : स्वाध्याय मंडल; (वैदिक अनुसंधान केन्द्र), किल्ला पारडी गुजरात।

17. अथर्ववेद भाग-1 अनुवाद : पं० श्री राम शर्मा आचार्य, संस्कृत संस्थान बरेली (यू० पी०), संस्करण 1998 ई०

18. पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, [अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रकाशक : स्वाध्याय मंडल (वैदिक अनुसंधान केन्द्र) किल्ला-पारडी, गुजरात, संस्करण 14 जनवरी 2000]

19. श्रीमद्भगवत गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर (यू०पी०)

20. मनुस्मृति, पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार (यू०पी०), संस्करण द्वितीय, 1997 ई०)

21. उपर्युक्त

22. उपर्युक्त

23. महर्षि दयानन्द सरस्वती (यजुर्वेद भाषा भाष्य, प्रकाशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, संस्करण 2001)

24. पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, प्रकाशक : वसंत श्रीपाद सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल पारडी गुजरात, संस्करण 1993।

25. सत्यार्थ प्रकाश अध्याय 7, पृ० 126 हिन्दी संस्करण 1989 ई० प्रकाशक आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली दिल्ली-6

26. उपर्युक्त

27. उपर्युक्त

28. सत्यार्थ प्रकाश अध्याय 11, पृष्ठ 223 प्रकाशक : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-6

29. उपर्युक्त

30. अनुवाद– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, शान्तिकुंज, हरिद्वार, (यू०पी०)